देस हरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

वर्ष-5, अंक : 21 मूल्य: ₹ 35/-

बंदा अन्न–पाणी से ही नहीं

बल्कि बोल–बाणी से भी पळता है

ISSN 2454-6879

अंक 21, जनवरी- फरवरी 2019

देस हरियाणा

912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118
संपादकीय - 94164-82156
संपर्क - व्यवस्था - 99918-78352
ई-मेल : haryanades@gmail.com
Website: desharyana.in
Facebook.com//desharyana
Youtube.com//desharyana

सहयोग राशि

व्यक्तिगत: 3 वर्ष 500/, 1 वर्ष 200/-
(रजि. डाक खर्च अलग)
संस्था: 3 वर्ष 1400/-, 1 वर्ष 500/-
आजीवन: 5000/- संरक्षक :10000/-

ऑनलाईन भुगतान के लिए

देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र
बैंक खाता संख्या - 50297128780,
IFSC: ALLA0211940

इबकी बार

आवरण डिजाइन असीम

स्वामी-प्रकाशक-सम्पादक-मुद्रक सुभाष चंद्र द्वारा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा से प्रकाशित

जनपक्षीय राजनीति का मार्ग प्रशस्त करें

सेवा देश दी जिंदड़िए बड़ी ओखी,
गल्लां करणियां ढेर सुखल्लियां ने।
जिन्नां देश सेवा विच पैर पाइया
उन्नां लख मुसीबतां झल्लियां ने।

- करतार सिंह सराभा

यह साल जलियांवाला बाग नरसंहार का सौवां साल है। यह घटना सत्ता के दमन, क्रूरता, निर्दयता और अमानवीयता के चरित्र को दर्शाती है तो दूसरी तरफ सत्ता के इस मानव -विरोधी रवैये के खिलाफ जनता के संघर्ष की याद दिलाती है। यह बात सही है कि सन् 1947 में भौतिक तौर पर तो साम्राज्यवादी सत्ता भारत से रुखसत हो गई, लेकिन सामंती व साम्राज्यवादी शासकीय चरित्र के अवशेष जरूर छोड़ गई। शायद यही कारण है कि जनता को जब-तब सत्ता के दमनकारी और क्रूरतापूर्ण व्यवहार के दर्शन होते ही रहते हैं। लेकिन यह भी दिन के उजाले की तरह साफ है कि जिस तरह से देशभक्तों-क्रांतिकारियों ने सत्ता को करारा जबाब दिया था वह लोकतंत्र में भरोसा करने वालों को हमेशा ही प्रेरणा देता रहेगा।

यह वर्ष भारत के लोकतंत्र के लिए अहम है। इस वर्ष पंद्रहवीं लोकसभा के लिए चुनाव होने हैं। यही अवसर होता है जब जनता राजनीतिक दलों से हिसाब मांगती है और उनका हिसाब भी चुकता करती है। इसी दौरान जनता राजनीति सीखती भी है और राजनीतिबाज नेताओं व दलों को सियासत का पाठ सिखाती भी है।

चुनावों के दौरान किसी न किसी रूप में समस्त आबादी राजनीतिक प्रक्रियाओं में शामिल होती है। जनता की समस्त ऊर्जा एक बिंदू पर केंद्रित हो जाती है। जनता राजनीति में दिलचस्पी तो लेती है, लेकिन अनुभव ये बताता है कि चुनावों के दौरान राजनीतिक विमर्श की गुणवत्ता नहीं होती। जनता तो राजनीति से अपने जीवन से जुड़े सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर संवाद करना चाहती है और अपनी समस्याओं के समाधान पर बहस चाहती है, लेकिन विडम्बना ही है कि अखबारों, इलेक्ट्रोनिक मीडिया, सोशल मीडिया या परस्पर बातचीत में चुनावी जीत की तिकड़मों, जोड़-तोड़, नेताओं की परस्पर की गई

टिप्पणियों और क्षेत्र विशेष के जातिगत समीकरणों के जोड़-घटा में चुनावी-विमर्श की इतिश्री हो जाती है।

अपनी नाकामयाबियों को छुपाने के लिए राजनीतिक दल लोगों को जात-धर्म-क्षेत्र आदि की संकीर्णताओं में उलझाने की भरसक कोशिश करते हैं। भावनात्मक व गैर-राजनीतिक सवालों पर ऐसा उन्माद पैदा करते हैं कि वास्तविक समस्याओं से ध्यान हट जाता है। लोकतंत्र के चुनावी-पर्व में शोर-शाराबा व जोश तो होता है, लेकिन विवेक मंद पड़ जाता है।

इन अवसरों पर और ऐसे माहौल में बुद्धिजीवियों-साहित्यकारों-सृजनकर्मियों की अधिक भूमिका बनती है, लेकिन अनुभव यही बताता है कि इस दौरान सार्वजनिक जीवन पर उनका विशेष प्रभाव नजर नहीं आता। राजनीति के इस बंभुळिये से वे बचकर ही निकल जाना चाहते हैं। सिने-कलाकारों को तो राजनीतिक दल व नेता अपने प्रचार में बुलाते भी हैं, लेकिन साहित्यकारों की शायद ही किसी को याद आती होगी। समाज में विचारों व संवेदना को परिष्कृत करने वाला यह जीव इस समय निहायत अप्रासंगिक हो जाता है। राजनीतिक दलों में विचारहीन लोगों के दबदबे के कारण ही ऐसा नहीं हो रहा, बल्कि स्वयं साहित्यकार भी इसके जिम्मेवार हैं।

साहित्यकारों का दायित्व बनता है कि वे राजनीतिक प्रक्रियाओं और परिघटनाओं को तो अपनी रचनाओं की विषयवस्तु बनाएं ही, बल्कि जमीनी स्तर पर हरसंभव कोशिश करें कि राजनीति की दिशा व चरित्र जनपक्षीय बने। सत्ता-पिपासु दलों की राजनीति को जनता के समक्ष उदघाटित करने में रुचि लेते हुए जनपक्षीय राजनीति का मार्ग प्रशस्त करें। प्रेमचंद ने वैसे ही नहीं कहा था कि साहित्य राजनीति का पिछलग्गू नहीं, बल्कि मशाल लेकर उसके आगे चलता है। कुछ साहित्यकार साहित्य को राजनीति से दूर रखने की वकालत करते रहते हैं और विभिन्न दलों के राजनेताओं व सरकारों से विभिन्न किस्म के पुरस्कार झटकने व कथित सम्मान प्राप्त करने के जुगाड़ भी भिड़ाते रहते हैं। लेकिन विचार करने की बात यह है कि यदि बाल्मीकि के रामायण और व्यास के महाभारत महाकाव्य से राजनीति निकाल दें उसमें बचेगा ही क्या ? यदि ये महाकवि अपने समय की राजनीति से उदासीन रहते तो ऐसी कालजयी कृतियों की रचना बिल्कुल भी नहीं कर सकते थे।

यह साझा करते हुए हमें बेहद खुशी हो रही है कि देस हरियाणा पत्रिका की टीम 9 व 10 फरवरी को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र के आर के सदन में तीसरे हरियाणा सृजन-उत्सव का आयोजन कर रही है। पहले दो सृजन उत्सवों ने हरियाणा के साहित्यिक-सांस्कृतिक-बौद्धिक परिवेश में अपनी पहचान बनाई है। यह एक ऐसा अनूठा कार्यक्रम है, जिसमें सृजन के समस्त माध्यमों में कार्यरत सृजनकर्मी और समाज में बदलाव के लिए कार्यरत समस्त वैचारिक सरणियों से संबंद्ध कार्यकर्ता शामिल होते हैं। सामाजिक व सृजनात्मक मुद्दों पर रचनात्मक संवाद करते हैं। रेखांकित करने योग्य बात ये है कि यह संवाद बुद्धि-विलासियों का चकल्लस नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव की जमीन तैयार कर रहा है। विशेष बात ये भी है सृजन के ये उत्सव सरकारी संस्थाओं अथवा सेठों-पूंजीपतियों के अनुदान से नहीं, बल्कि जन-धन से हो रहे हैं। इन उत्सवों ने प्रदेश और देश के साहित्यकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है और साहित्यकारों-सृजनकर्मियों का हर प्रकार से भरपूर सहयोग इन उत्सवों को मिल रहा है। इनकी सफलता का पूरा श्रेय देस हरियाणा पत्रिका की टीम को है जो अपने मित्रों-सहयोगियों से धन एकत्रित करने से लेकर कार्यक्रम की व्यवस्था के हरेक पहलू में जी-जान लगाती है।

इस अंक में तारा पांचाल व एस. आर. हरनोट की कहानियां, डॉ. भीमराव आंबेडकर की आत्मकथा, शहीद उधम सिंह की जीवनी, हरभगवान चावला की लघुकथाएं, स्वामी वाहिद काजमी के साक्षात्कार समेत रागनी व लोकथाएं भी हैं। इसमें कहानी, आत्मकथा व जीवनी आकार की दृष्टि से कुछ लंबी लग सकती हैं, लेकिन ये बेहद जरूरी व सामयिक हैं।

उम्मीद है कि आप को यह अंक पसंद आयेगा।

प्रोफेसर सुभाष चंद्र

शहीद उधम सिंह की आत्मकथा

□ डॉ. सुभाष चन्द्र

(जलियांवाला बाग नरसंहार का 100 वां साल है। इस घटना ने भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम व समाज को विभिन्न तरीकों से प्रभावित किया था। शहीद उधम सिंह का नाम इससे जुड़ा है। इस अवसर पर प्रस्तुत है आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई उनकी जीवनी। इसके लेखक सुभाष चंद्र कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में प्रोफेसर हैं और देस हरियाणा पत्रिका के संपादक हैं)

सेवा देश दी जिंदड़िए बड़ी ओखी,
गल्लां करणियां ढेर सुखल्लियां ने।
जिन्नां देश सेवा विच पैर पाइया
उन्नां लख मुसीबतां झल्लियां ने।

ये पंक्तियां मेरी जेब में हमेशा ही रहती हैं। अपने करतार सिंह सराभा के गीत की हैं। सराभा ? साढ़े उन्नीस साल की उम्र में ही फांसी पर चढ़ाया गया था उसे। गदर पार्टी का हीरो था हीरो। क्रांतिकारियों का प्रेरणा-पुंज। शहीद भगतसिंह की जेब में तो सराभा की फोटो हमेशा रहती थी। गदर पार्टी का अखबार छापते थे सराभा। बड़ा दिलचस्प विज्ञापन छपता था उसमें। जरूरत है .... जोशीले .... बहादुर .... सैनिकों की

तनख्वाह - मौत
इनाम - शहादत
पेंशन - आजादी
कार्यक्षेत्र - हिंदोस्तान

मुझे जानते हो? शहर के चौक पे लगा बुत कुछ कुछ मेरी शक्ल से मिलता है और उस पर नाम लिखा रहता है - शहीद उधम सिंह। मेरी जिंदगी की दास्तान जानने की इच्छा है। कहां से शुरु करें। चलो शुरु से ही शुरु करता हूं।

उन्नीसवीं सदी खत्म होने और बीसवीं सदी शुरु होने में केवल पांच दिन बाकी थे जब जन्म हुआ। हिसाब किताब लगाने लगे। 26 दिसम्बर 1899। दिन था मंगलवार।

कोई भी शख्स अपने माहौल, अपने जमाने की हलचलों और अपनी परंपरा से ही बनता है। किसी शख्सियत को जानना हो तो उस माहौल को देखो जिसमें वो पला-बढ़ा।

जन्म हुआ सुनाम में। पंजाब का एक कस्बेनुमा गांव। उस समय पटियाला रियासत का भाग था। पंजाब गुरुओं की धरती है। गुरुओं की शहादत और त्याग के किस्से तो घुट्टी में मिलते हैं यहां। लैला-मजनूं, शीरीं-फरहाद, सोहनी-महिवाल के प्रेम किस्से बच्चे-बच्चे की जुबान पर हैं। ये किस्से भी त्याग से ही शुरु होते हैं और खत्म होते हैं शहादत पर।

भारत का स्वतंत्रता संग्राम भी त्याग और बलिदान की दास्तान है। पंजाब में हथियारबंद आंदोलनों व शहादत की धारा खूब परवान चढ़ी। कूका-आंदोलन, गदर-पार्टी, बब्बर अकाली, नौजवान भारत सभा, किरती पार्टी और साम्यवादी ग्रुप सब हथियारों से हिचकिचाहट नहीं करते। इन हिरावल दस्तों में लड़ाके थे - किसानों और मजदूरों के बेटे। वो इसलिए कि अंग्रेजों के जमाने में सबसे ज्यादा दुर्गति इन्हीं की हुई थी। राजे-रजवाड़े, जागीरदार तो चांदी कूट रहे थे अंग्रेजों के साथ मिलकर। आप भी लूटो और लूट में साथ दो यही था इनका जीवन-सूत्र।

मेरे पिता छोटे किसान थे। खेती करते। मिट्टी के साथ मिट्टी होना पड़ता तब चार दाने हाथ लगते। कितना ही पैदा कर लो। शोषण की चक्की में बचता ठन-ठन गोपाल। खाने के लाले पड़े रहते। जिस बंदे को दो टाइम की रोटी नसीब ना हो उसकी सामाजिक हैसियत का अंदाजा लगाना कोई मुश्किल थोड़े ही है। बड़ा असर पड़ता है बंदे की पर्सनल्टी पर काम-धंधे का। परिवार की बैकराऊंड का। किसान को हाड़तोड़ मेहनत करनी पड़ती है। नेचर के साथ। खुले में। गर्मी-सर्दी-बरसात, अंधेरा-उजाला। कोई विंटर वेकेशन नहीं, कोई समर वेकेशन नहीं। भोलापन, सादगी, स्पष्टवादिता किसान के करेक्टर में रचे बसे होते हैं। एक और बड़ी खास बात होती है - घोर विपत्ति भी जिंदगी का प्रसाद मानकर हंसते-हंसते खा लेना।

मां का नाम हरनाम कौर और बाप था श्री टहल सिंह। सुना है पहले मेरी मां का नाम था नरैणी था और बाप का चुहड़ राम। सोच में पड़ गए कि फिर ये नाम कैसे बदल गए। बताता हूं ...

एक थे बाबू धन्ना सिंह। नीलोवाल नहर पर ओवससियर बन कर आए थे। उनका दफ्तर और घर सुनाम में था। बड़े धर्म-कर्म वाले आदमी थे। मेरे पिता उनके संपर्क में आ गए और उनसे प्रभावित होकर अमृतपान कर लिया। उस मौके पर मां नरैणी से हो गई हरनाम कौर और बापू चूहड़राम हो गए टहलसिंह।

दरअसल खालसा पंथ की नींव रखते समय गुरु गोबिंद सिंह ने पानी के कड़ाहे में शक्कर घोली थी अपने खांडे

की धार से। उसी कड़ाहे से मुंह लगाकर पिया था सबने। कोई झूठ -सूच नहीं थी। सब बराबर। कोई जात न पांत। ऊंच ना नीच। यही है अमृत छकना - अपने को समर्पित करने का भाव जगाने की एक क्रिया।

दरअसल बात ये थी कि बाबू धन्नासिंह ने नहर पे मेरे बापू की नौकरी भी लगवा दी थी - यही बेलदार वगैरह। कुछ लोग ये भी कहते हैं पिता जी उनके घरेलू नौकर थे। जो भी हो। एक बात पक्की है जब उनकी सुनाम से बदली हो गई तो पिता जी बेरोजगार हो गए थे।

बचपन को याद करना तो ऐसा है जैसे हथेली पे अंगारा रख दिया हो। मां की तो शक्ल भी याद नहीं। मैं जब तीन साल का भी नहीं हुआ था तो वो दुनिया से चलाणा कर गई। कहते हैं बुखार बिगड़ गया था। घर में बच गए तीन जीव। बापू, मैं और मेरा बड़ा भाई साधु सिंह। भाई मुझसे तीन साल बड़ा था।

मां गुजर गई और बापू के पास कोई रोजगार नहीं। सोचता हूं तो मैं थोड़ा भावुक हो जाता हूं। बापू पे क्या बीती होगी? दो छोटे-छोटे बच्चे रोजगार कुछ है नहीं। पर पेट तो खाने को मांगता है।

पिता जी ने रेलवे की नौकरी कर ली। उपाली गांव में डयूटी। नौकरी थी - फाटकमैन। काम कुछ खास नहीं था। दिन में एक-दो गाड़ी गुजरती। गाड़ी आई, फाटक बंद कर दिया। गाड़ी गई, फाटक खोल दिया। सारा दिन खाली। रेलवे क्वाटर में रहते। क्वाटर क्या वह कोठड़ी ही थी। पिता जी किसान तो थे ही। आस पास की जमीन ठीक कर ली। सब्जी उगा ली। दूध पीने के लिए बकरियां पाल ली। मैं छोटा सा ही था। पर मेरा भाई साधु सिंह उनकी मदद कर देता। टाइम ठीक गुजरने लगा।

एक दिन एक घटना घटी। याद करके रोमांच हो आता है। हुआ ये था कि एक दिन सवेरे-सवेरे मुंह अंधेरे पिता जी जंगलपानी के लिए चले गए। बकरियों के बाड़े में एक भेड़िया घुस आया। बकरियां मिमियायी। जानवर है तो क्या। जान तो सभी को प्यारी होती है। मेरी आंख खुल गई। मुझे इतनी अक्ल तो थी नहीं। पता नहीं कैसे हुआ। मैंने कुल्हाड़ी उठाई और भेड़िये को दे मारी। इतने में शोर सुनकर पिता जी भी आ गए। गांव के भी कुछ लोग दौड़े दौड़े आ गए। आदमियों के आने की बीड़क सुनकर भेडिय़ा भाग गया। लोगों ने मेरे हाथ में कुल्हाड़ी देखी तो उन्होंने बड़ी शाबासी दी। मुझे बहादुर, निडर कहकर पीठ थपथपाने लगे। कहने लगे नाम ही शेरसिंह नहीं, बच्चे का दिल भी शेर का है।

औलाद की तारीफ सुनकर पिताजी को खुशी तो जरूर हुई होगी। लेकिन उनके मन में दहशत बैठ गई। पिता जी ने सोचा होगा किसी दिन भेड़िया फिर आ गया। बच्चों को खा गया तो इस नौकरी को क्या चाटूंगा? जान की सुरक्षा तो रोजगार की सुरक्षा से पहले चाहिए।

छ: महीने में ही नौकरी छोड़ दी। अपने टांडे-टिरे उठाकर चल दिए अमृतसर शहर की ओर। चल तो दिए लेकिन अमृतसर पहुंचे नहीं। रास्ते में ही उनके मौत हो गई। ये बात है 1907 की। आठ साल का था मैं।

धुंधली सी याद है। इतने सालों बाद भी वो दृश्य नहीं भूलता मुझे। जब पिता जी ने हमारे दोनों भाइयों के हाथ सरदार चंचल सिंह के हाथ में पकड़ा कर कहा था, मेरे बच्चों का ख्याल रखना। इससे आगे ज़ुबान उनके तालू से चिपक गई थी।

असल में पिता जी थे बीमार। उपाली गांव से अमृतसर के लिए चले तो रास्ते में बीमारी बढ़ गई। भैंसावाले टोबे पर उदासी संन्यासी ठहरे हुए थे। हम भी वहीं ठहर गए। पिताजी बेहोश हो गए। पिता जी की हालत देखकर उन संन्यासियों को हम पर तरस आ गया। हमें खाना दिया। पिता जी को दवाई भी दी। लेकिन बीमारी में कोई फर्क नहीं पड़ा। संन्यासियों ने भांप लिया कि पिता जी बचेंगे नहीं। वे मुझे और मेरे भाई को अपने सम्प्रदाय में शामिल करने के लिए तैयार हो गए। उन्होंने हमें पीला पटका भी पहनाना शुरु कर दिया था।

एक दिन वहां से तरन तारन वाले सरदार छांगा सिंह का जत्था गुजर रहा था। उसमें सुनाम के रहने वाले सरदार चंचल सिंह भी थे। उन्होंने पिता जी को देखते ही पहचान लिया। पिता जी ने हम दोनों के हाथ सरदार चंचल सिंह के हाथ में पकड़ा दिए और बड़ी ही दीनता से कहा - मेरे बेटों का ध्यान रखना। सरदार चंचल सिंह पिता जी को और हमें तांगे में ले गए। पिता जी को अस्पताल में दाखिल करवा दिया। वहां डाक्टर ने जांच की और आश्वासन दिया कि ठीक हो जायेंगे। चंचल सिंह जी हमें साथ लेकर घर चले गए। जब अगले दिन अस्पताल पहुंचे तो हमें अनाथ होने की सूचना मिली। मुझे सिर्फ इतना याद है कि साधूसिंह तो बुक्का फाड़ के रोये जा रहा था और सरदार चंचल सिंह हमारे सिर पर हाथ रखे हमें दिलासा दे रहे थे। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था। उनको देखकर मैं भी सुबकने लगा था।

जिंदगी का दूसरा अध्याय शुरु हो गया। हम पहुंच गए सेंट्रल सिक्ख अनाथाश्रम, अमृतसर में।

वहां पहुंचने की कहानी ये है। सरदार चंचलसिंह थे - धर्म प्रचारक। उन्होंने जाना था अपने जत्थे के साथ बर्मा। घर पे कोई था नहीं जो हमारी देखभाल करता। उन्होंने सोचा कि हमारे लिए अनाथाश्रम ही ठीक है। 24 अक्तूबर 1907 को सरदार छांगा सिंह और किशन सिंह रागी ने हमें दाखिल करवा दिया।

पूरा रिकार्ड है। अनाथाश्रम के दाखिल-खारिज रजिस्टर में मेरा नाम दर्ज है शेर सिंह और भाई का साधु सिंह।

आप कन्फूयज न हों? क्रांतिकारी के लिए नाम बदलना जरूरी सा हो जाता है कई बार। मेरे नामों की कहानी बड़ी दिलचस्प है। मां-बाप ने मेरा नाम रखा था - शेरसिंह। उधमसिंह नाम तो मेरा तब पड़ा जब मैं जिंदगी के चौंतीस साल बिता चुका था। 20 मार्च 1933 को लाहौर से उधम सिंह के नाम से मैंने पासपोर्ट बनवाया। तभी से उधमसिंह मेरा नाम है। ये इसलिए किया क्योंकि 1927 में मुझ पर मुकदमा बना। गदरी साहित्य और गैर-कानूनी हथियार रखने के जुर्म में। सजा हुई। मेरे सारे नाम फ्रेंक ब्राजील, उधे सिंह, उदय सिंह, शेर सिंह वगैरह सब पुलिस रिकार्ड में आ चुके थे। मुझे उन देशों का वीजा नहीं दिया जा रहा था जिनमें गदर पार्टी का असर था।

जब अनाथाश्रम में दाखिल हुआ तो मेरा नाम उधे सिंह कर दिया। मेरे भाई का नाम भी बदल दिया था। साधु सिंह से मुक्ता सिंह।

मेरा एक नाम और है ... जिसे मैं बहुत पसंद करता हूं। यह मैंने खुद ही रखा है। पता है क्या ? मोहम्मद सिंह आजाद। मैंने बाजू पर टैटू बनवाया हुआ है इस नाम का। जब कैक्सटन हाल में मैंने ओडवायर को गोली मारी तो मोहम्मद सिंह आजाद के नाम से ही मैंने पुलिस को बयान दिया था। मैंने कहा था कि मेरा नाम ना बदल देना। मेरा नाम है मोहम्मद सिंह आजाद।

मेरे जैसे वक्त के मारों के लिए वरदान था अनाथाश्रम। अनाथाश्रम में रहा दस साल। उस समय अनाथाश्रम के मैनेजर थे सरदार सोहनसिंह बाबू धन्ना सिंह के दामाद। वही ओवरसीयर बाबू धन्ना सिंह जिन्होंने मेरे बापू जी की नौकरी लगवाई थी। बाबू धन्नासिंह की बेटी सरदारनी मायादेवी ने साधूसिंह को पहचान लिया था।

अनाथाश्रम की जिंदगी बाहर जिंदगी से कुछ अलग थी। बंधा-बंधाया नीरस सा रूटीन। सुबह उठो। शौच जाओ। नहाओ। पाठ करो। नाश्ता करो। फिर दो तीन घंटे कुछ काम करो। दोपहर का खाना खाओ। शाम कुछ खेल लो। फिर खाना खाओ। पाठ करो। सो जाओ। हर रोज वही रूटीन।

जिंदगी के सबक यहीं सीखे। घूमने निकल जाते जिधर मन करता। रेलवे स्टेशन, रामबाग, हाल बाजार, सिविल लाइन। कहीं भी। जलसा-जुलूस निकलता तो हो लेते साथ-साथ। बड़ा मजा आता जिंदाबाद-मुर्दाबाद करने में। एक बात जिसने मुझे तोड़ दिया ये थी कि मेरे भाई साधु सिंह भी मुझे दुनिया में अकेला छोड़ गए। निमोनिया बिगड़ गया था। ये बात है 1917 की। मन बहुत ही उदास हो गया था। लगता था दुनिया ही उजड़ गई। मन में बुरे बुरे ख्याल आते।

अनाथाश्रम में सबको कुछ न कुछ काम करना पड़ता। मेरा मन पेचकस-प्लास में लगता। मशीनों के साथ मजा आता। नतीजा ये हुआ कि मैं मकैनिक बन गया। ये हुनर जिंदगी भर काम आया। दुनिया में कहीं भी गया इसी हुनर से अपनी जगह बना ली। साईकिल-मोटर साईकिल मैं ठीक कर देता। लकड़ी-लोहे का सारा काम मैं कर लेता। बिजली का काम मैं कर लेता। मेरा हाथ साफ था। दोस्त-मित्र मुझे इंजीनियर कहते। मजे की बात है अमेरिकी रिकार्ड में भी इंजीनियर लिखा है। औपचारिक शिक्षा की डिग्री कोई थी नहीं। हां उर्दू, गुरमुखी पढ़-लिख लेता और कामचलाऊ अंग्रेजी भी। अंग्रेजी सरकार के रिकार्ड में भी मुझे कम पढ़ा लिखा यानी पुअर एजुकेटिड़ ही बताया है।

13 अप्रैल 1919 को जलियांवाला बाग नरसंहार के बारे में पूरा याद है। उसको कैसे भूल सकता हूं। उस घटना ने विचलित कर दिया था मुझे। वो मंजर कभी भूल नहीं पाया। अमृतसर में कई साल बाद तक इस घटना के चर्चे रहे। मैं लोगों की दास्तान सुनता तो मेरा खून खौलने लगता। एक अजीब सी चीज मेरे अंदर पनप गई। डायर से मुझे नफरत हो गई। उसका जिक्र आते ही आंखों में खून उतर आता। उस जालिम ने 1650 राऊंड गोलियां चलाई थी। सरकारी रिकार्ड की मानें 379 आदमियों की मौत हो गई थी। प्राईवेट रिपोर्टें और भी ज्यादा बताती हैं। कितने तो बच्चे और औरतें थी। बाग में एक कुंआ था सैंकड़ों लाशें तो उसी से निकली थीं।

जलियांवाला बाग कोई बाग नहीं था, बल्कि एक मैदान था। तीन तरफ तो मकानों की पिछली दीवारें थीं ऊंची-ऊंची। एक तरफ से ही अंदर-बाहर आने-जाने का संकरा सा रास्ता था। वहां एक जलसा हो रहा था। हजारों लोग थे इसमें। अंग्रेज अफसर जनरल डायर फौजी दस्ते के साथ आया और दनादन गोलियां चलानी शुरु कर दी। न उसने चेतावनी दी। ना जाने के लिए कहा। गोलियां चली धांय-धांय। भगदड़ मच गई। हाहाकार मच गया।

गोलियां उसने इसलिए चलाई कि वह अंग्रेजी राज का विरोध करने वालों में दहशत पैदा करना चाहता था। असल में 1914 से 1918 तक विश्व युद्ध हुआ। इसमें भारतीयों ने अंग्रेजों का साथ दिया। उनको उम्मीद थी कि युद्ध के बाद अंग्रेज कुछ राहत देंगे। पर हुआ एकदम विपरीत। एक कानून लागू किया। उसका नाम था रोलेट एक्ट। इस कानून में सरकार किसी को भी गिरफ्तार करती। जेल में डालती। ना वकील, ना दलील, ना अपील। लोगों को गुस्सा आया। विरोध शुरु कर दिया। अमृतसर में विरोध बहुत तीखा था। इसको कुचलने के लिए यहां के दो

बड़े नेता डॉ. सत्यपाल गुप्त और सैफुद्दीन किचलू को गिरफ्तार कर लिया। उनकी गैर कानूनी गिरफ्तारी के विरोध में था ये जलसा-जुलूस। असल में पूरा शहर ही उमड़ पड़ा था।

शहर के साथ देहात से भी लोग शामिल थे। असल में लोगों का जीना दूभर हो गया था। विश्व युद्ध लोगों के लिए लेकर आया था - कंगाली, भुखमरी, दरिद्रता। युद्ध खत्म होने के बाद गेहूं, जौं, ज्वार, बाजरा, चना, मक्का, कपड़े सभी की कीमतें तीन-तीन चार-चार गुना तक बढ़ गई थी।

अपने समय के क्रांतिकारियों से मिला कि नहीं मिला। ये बात तो जानने लायक है। भगतसिंह तो मेरा ब्रेन-फ्रेंड है — मानस-मित्र। मेरा सबसे प्यारा दोस्त। हमेशा मेरे साथ ही रहता है। ये देखो उसकी फोटो हमेशा साथ रखता हूं। वो मुझसे नौ साल बाद दुनिया में आया, पर नौ साल पहले शहीद हो गया। बड़ा फास्ट था बंदा। उससे मुझे बड़ी प्रेरणा मिलती है। उसने अपने छोटे भाई कुलतार को पत्र में लिखा था ना -

हवा में रहेगी मेरे ख्याल की बिजली
ये मुश्ते खाक है फ़ानी, रहे रहे न रहे।

मेरे दिलो-दिमाग में भगतसिंह के ख्याल की बिजली दौड़ती रही। पता है वो ख्याल क्या था? दुनिया से शोषण के बीज का खात्मा हो। इंकलाब हो। मैं कहता हूं जिसके दिल में ये ख्याल नहीं वो इंसान ही नहीं।

जब उसे शहीद किया गया। उन दिनों मैं मुल्तान जेल में था। हुआ यूं था कि अगस्त 1927 को मैं अमृतसर में था। अचानक एक पुलिस वाले ने पीछे से मुझे पकड़ लिया। चार पुलिस वाले थे। मैं कुछ समझता इससे पहले ही इंस्पेक्टर बोला - हमें गुप्त सूत्रों से तेरे बारे में सूचना मिली है। और मेरी तलाशी लेने लगे। मेरे पास पिस्तौल थी। लाईसेंस था नहीं। फिर वो पूछने लगे कि बाकी सामान कहां है। मैं काल्हा सिंह की वर्कशाप पर रूका हुआ था। वहां मेरी अटैची की तलाशी ली। उसमें कुछ रसीदें थी, काला बटुआ था, कुछ सर्टीफिकेट, 6 फोटो और कुछ गदर पार्टी का साहित्य। गदर की गूंज, रूसी गदर ज्ञान समाचार, पम्फलेंट गुलामी का जहर, गदर की दूरी, देशभक्तों की जान।

उन्होंने पूछा - कहां से आए हो। मैंने बता दिया अमेरिका से। अमेरिका से आया कराची और कराची से अमृतसर। फिर पूछने लगे किसलिए आए हो? तेरा जिंदगी का मकसद क्या है? मैंने भी सच्ची बात बता दी कि मैं स्पष्ट तौर पर कहता हूं कि मेरा मकसद यूरोपियनों को मारना है, जो भारतीयों पर शासन करते हैं और मुझे बोल्शेविकों से पूरी हमदर्दी है। उनका मकसद भारत को विदेशी नियंत्रण से मुक्त करवाना है।''

बस बना दिया गैर कानूनी हथियार और राजद्रोही साहित्य रखने का केस। पांच साल की सजा काटी।

अमरीका में कई जगह रहा — कैलिफोर्निया, न्यूयार्क, शिकागो। अमरीका में गदर पार्टी के कामरेडों से संपर्क हुआ। उनकी बातें सुनकर तो रोंगटे खड़े हो जाते। वहां कामागाटा मारू जहाज के किस्से सुनता। गदरियों की कुरबानी के रोमांचक प्रसंग सुनकर मन में शहादत जोश मारती। अंग्रेजों के शोषण व जुल्म की दास्तान सुनकर उनसे चिढ़ होती। दुनिया में घट रही घटनाओं पर चर्चा होती। रूसी क्रांति की बातें चलतीं। पता चलता कि मजदूरों और किसानों ने जुल्म का जुआ उतार फेंका। ऐसा राज स्थापित किया है जिसमें गरीब-अमीर, शोषक-शोषित हैं ही नहीं। ये बातें बड़ी अच्छी लगती। अप्पां भी मेहनतकश तबके से ही थे। दिमाग में पक्की तौर पर बैठ गया कि दुनिया में सारे जुल्म -अत्याचार, युद्ध-फसादों की जड़ शोषण है। दुनिया में कोई देश दूसरे देश का और एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण न कर सके ऐसी व्यवस्था बनाने के लिए कोशिश करनी चाहिए। जो दुनिया में इस तरह के प्रयास कर रहा है वो अपना दोस्त है। रूस के क्रांतिकारियों से हमदर्दी हो गई।

मेरे जेहन में लाला हरदयाल के शब्द गूंजते रहते। हमारा नाम है गदर। हमारा काम है गदर। भारत में होगा गदर। गदर होगा जब कलम बनेगी बंदूक। स्याही होगी खून।

गदर पार्टी की सोच मेरी सोच बन गई थी। मैं एक भारतीय के नाते और किसान के तौर पर अंग्रेजी शासन को भारतीयों की जिंदगी के लिए हानिकारक समझता।

पूंजीपति और बड़े जमींदार देश की पैदावार हड़प लेते। मौज उड़ाते, ऐश कूटते। हाई स्टैंडर्ड का जीवन जीते। लोगों की मेहनत की लूट-खसोट के बल पर। देश के लोगों के उत्थान में रत्ती भर योगदान नहीं। न स्कूल खोलने में ना रोजगार देने में। चौबीसों घंटे खेतों में खटते किसान। दाने-दाने को मोहताज। मेहनतकश मजदूर खून पसीना एक करते पर भूखों मरते। रोटी-कपड़ा-मकान, पढाई-दवाई हर चीज को तरसते।

अंग्रेजों ने हमारे देश को एक जेल और नरक में तबदील कर दिया । भारतीय राजनीतिक कैदियों के साथ जेलों में मारपीट की जाती। असहनीय कष्ट और तिरस्कृत किया जाता। महिलाओं के बाल पकड़ कर गलियों में घसीटा जाता। अपमानित किया जाता। पैने औजार उनके शरीर में चुभोए जाते। इससे बहुत लोग पागल हो गए। बहुत से लोग अंग्रेजों के वहशी खूनी अत्याचारों से मर गए। बहुत से लोगों के चेहरे के अंग काट दिए। आंखें निकाल दी।

अंग्रेजी आतंकवाद भारतीयों को कुचल नहीं सकता।

अंग्रेजी आतंकवाद के साये में दयनीय हालत में जीने की बजाए अपने लोगों की खातिर मरना पसंद। मैं और मेरे देश के लोग अंग्रेजी साम्राज्यवाद के अधीन रहने के लिए इस संसार में पैदा नहीं हुए। मैं सोचता कि ताकत से ही अंग्रेजों को भारत से निकालना संभव होगा।

ऐसे ऐसे विचार दिमाग में आने लगे। मैं खुद ही हैरान था कि मुझे क्या हो गया। असल में अपने लोगों से हमदर्दी उनकी तकलीफें दूर करने के संघर्ष में दिमाग में नए नए विचार व योजनाएं आतीं। खुद से आगे निकल कर देखते हैं तो एक नई रोशनी दिखाई देती है।

डायरेक्टर इंटेलीजेंस ब्यूरो, गृह विभाग, भारत सरकार की ओर से सन् 1934 में 'गदर डायरेक्टरी' जारी की गई थी। जिसमें अमरीका, यूरोप, अफगानिस्तान और भारत में गदर आंदोलन में हिस्सा लेने वाले लोगों के नाम शामिल हैं। इस डायरेक्टरी में नंबर एस 44 (पृ. 267) पर उधम सिंह का नाम भी दर्ज है।

पैर में ही कुछ चक्कर था। कहीं टिक के नहीं बैठ सका। पिता जी भी सुनाम से उपाली। और उपाली से अमृतसर की ओर। मैंने तो दुनिया के अनेक देशों की धरती देखी। इंग्लैंड का तो सभी को पता है वहां कैक्सटन हाल में गोली मारने के बाद तो मशहूर हो गया सारी दुनिया में। अमेरिका, अफ्रीका। भतेरे धक्के खाए बड़े पापड़ बेले। ये पूछो कहां कहां नहीं गया। कुछ समय काश्मीर में साधु का बाणा बनाकर भी रहा। पर मन में देश के लिए कुछ कर गुजरने की भावना हमेशा जोर मारती रही।

1934 में पहुंचा इंग्लैंड। वहां एक जगह नहीं रहा। रोजी -रोटी के लिए कई काम बदले। कई ठिकाने बदले। मोटर-मिस्त्री रहा। कारपेंटरी की। फेरी लगाई। दिहाड़ी भी की। ड्राईवरी भी की।

फिल्मों में भी काम किया।'साबू द ऐलीफेंट ब्वाय' और 'द फोर फैदर' में। 'एक्सट्रा' के तौर पर। एक हंगरी के पत्रकार और फिल्म-निर्माता थे - एलेग्जेंडर कोरडा। उसने अपना स्टूडियो बनाया था और उसने दो फिल्में बनाई थी गैर युरोपियन कलाकारों को स्पोर्ट करने के लिए। ये 1936 की बात है। असल में एक गोरी महिला फिल्म स्टूडियो में एक्सट्रा कलाकार थी। मैं उसके सम्पर्क में था। लंदन के पश्चिमी छोर पर रहती थी वह।

1938 इग्लैंड में एक झूठा केस भी दर्ज करवा दिया था मुझ पर। जबरदस्ती पैसे ऐंठने का। इसमें मेरे 200 पौंड खर्च हो गए। मेरी कार जब्त कर ली गई। मुझे नौकरी से निकाल दिया। पांच महीने बाद पहली ही पेशी पर खारिज हो गया था। इसमें कोई अंग्रेज नहीं था बल्कि अपने इंडियन के बीच ही विवाद था।

लंदन में शैफर्ड बुश गुरुद्वारे में मिलता था दोस्तों से। किसी से बहुत खास घनिष्ठता तो नहीं थी। कुछ ही दोस्त थे। शिव सिंह जौहल था। वह मुझे बावा कहता, इसलिए कि मुझे सांसारिक चीजों से कोई मोह नहीं था। और भी कुछ दोस्तों का नाम लिया जा सकता है। सरदार अर्जन सिंह पहलवान थे, सरदार गुरबचन सिंह, सरदार सुरेन सिंह, सरदार कबूल सिंह, सरदार नाजर सिंह, सरदार प्रीतम सिंह, बाबू करम सिंह। खूब हंसी-ठट्ठा करते। ताश खेलते। पार्टियां करते। खूब खाते-पीते। एक-दूसरे की टांग खिंचाई करते। वही इंडियन चुटकले। यही थी अपनी दुनिया लंदन में।

ये सारे पंजाब से ही थे कोई जालंधर के पास गांव से कोई लुधियाना के किसी गांव से। पंजाब के लोग इकट्ठे हों और पंजाब की बात ना हो ये कैसे हो सकता है। परदेश में अपनी भाषा में बात करने का मजा तो दुगुना हो जाता है। अपना पंजाब याद आ जाता। असल में हम रहते तो लंदन में थे पर बातें पंजाब की ही करते। अपने वतन की बात चलते ही मक्के की रोटी और सरसों के साग का स्वाद मुंह में तैर जाता। आंखों में अजीब सा सरुर। एक-एक बात याद आने लगती। जलियांवाला की बातें चलती। अंग्रेजों का जुल्म-अत्याचार और अपने लोगों की बेबसी। बातों-बातों में भगतसिंह का जिक्र भी आ जाता। मैं कहता एक दिन तुम भगतसिंह की तरह ही मेरी बातें करोगे अपने पोते-पोतियों को सुनाओगे मेरी शहादत के किस्से। जब मैं ऐसे कहता तो कोई मेरी बात पे यकीन ही नहीं करता था। दोस्त मित्र शादी-विवाह का जिक्र करते। उन्हें क्या पता था अपनी शादी तो फंदे से पक्की हो गई थी।

13 मार्च 1940 को हुई थी कैक्सटन हाल वाली घटना। वहां मैं नया सूट पहनकर और हैट लगाकर गया था। अपने अल्टीमेट सफर के लिए। घटना के बाद जर्मन आकाशवाणी ने सही ही प्रसारित किया था कि हाथी और भारतीय कभी भूलते नहीं वो बीस साल बाद भी प्रतिशोध ले लेते हैं।

मीटिंग दोपहर तीन बजे शुरु होनी थी और लगभग साढ़े चार तक चलनी थी। टिकट पर ही अंदर जा सकते थे। डेढ़ सौ के करीब लोग मौजूद थे। 130 तो सीटें ही थी। बाकी लोग आने-जाने के रास्तों में भी खड़े थे। मैं दाएं तरफ के रास्ते में खड़ा था सामने वाली कुर्सियों के पास ही। मीटिंग खत्म हुई। लोग जाने की तैयारी में थे। मैंने चार लोगों को गोली मारी थीं। कुल छह गोलियां चलाई थी। ओडवायर तो मौके पर ही चित हो गया था। बाकी घायल हो गए थे। जेटलैंड, लेमिंगटन। गोली चलाने के बाद मैं बाहर निकलने के लिए लपका तो बरथा हेरिंग नाम की महिला ने मेरा रास्ता रोक लिया और मेरे कंधे पकड़ लिए। तभी हैरी रिच्स ने मेरे कंधों पर झपट्टा मारा। मैं गिर गया। मेरे हाथ से

रिवाल्वर भी छूट गई। रिच्स ने रिवाल्वर को दूर सरका दिया। इतनी देर में पुलिस पहुंच गई।

इसका मुझे कभी अफसोस नहीं हुआ। अफसोस मुझे इस बात का था कि केवल एक ही मरा। असल में रास्ते में कुछ महिलाएं थीं इस कारण शायद। उस समय मैं किस अवस्था में था मैं अपना बयान पढ़ देता हूं अंदाजा लगा लेना। मैंने वही लिखवाया था जो सच था।

बयान से पहले एक बात बता दूं मेरे गोली चलाने के बाद दहशत इतनी थी कि उस बिल्डिंग की रसोई में काम करने वाले वेटर और दफ्तर के चपरासियों तक को भी बाहर नहीं आने दिया गया था। पूरी तरह सील कर दिया था।

डिटैक्टिव इंस्पैक्टर डीटन ने मुझसे पूछा - क्या तूं अंग्रेजी समझता है। मैंने कहा - हां। डीटन कहने लगा - तुम्हें हिरासत में लिया जाएगा। पूछताछ के लिए।

मैंने कहा - इसका कोई फायदा नहीं। यह सब खत्म हो चुका है। एक सारजैंट जोन्स था। वह मुझसे मिली वस्तुओं की सूची बना रहा था। उसमें लिनोलीयम चाकू था। मैंने कहा - ये तो इसलिए रख लिया था क्योंकि कुछ दिन पहले लफंगों की टोली ने मुझे केमडन टाऊन में घेर लिया था।

सारजेंट जोन्स ने सलाह दी - ज्यादा न बोल। पर मुझे क्या परवाह थी मैंने कहा - मैंने यह इसलिए किया, क्योंकि मुझे उससे चिढ़ थी और वह इसका हकदार था। मेरा किसी सोसायटी या ग्रुप से संबंध नहीं है। --- मुझे इसकी कोई परवाह नहीं। मैं मौत से नहीं डरता। इसका क्या फायदा, मरने के लिए बुढ़ापे तक इंतजार करो, यह कोई अच्छी बात नहीं। तब मरना चाहिए, जब आप जवान हो, यह ठीक है। मैं भी यही कर रहा हूं।

मेरी बात सुनकर जोन्स बोला - जो कुछ बोल रहा है ना, अदालत में सबूत के तौर पर पेश किया जाएगा।

मैंने कहा - मैं अपने देश के लिए मर रहा हूं, क्या मुझे अखबार मिल सकता है ? मैंने पूछा - जैटलैंड मर गया क्या। ये भी मरना चाहिए। मैंने उसको भी बक्खी में दो गोलियां मारी हैं -- मैंने यह पिस्तौल बैरन माऊथ से एक फौजी से खरीदी थी। तुझे पता? मैंने उसके लिए कुछ शराब खरीदी थी। --- जब मैं चार-पांच साल का था मेरे मां-बाप गुजर गए। मेरे पास जो जायदाद थी, मैंने बेच दी। जब मैं इंग्लैंड आया, मेरे पास 200 पौंड से ऊपर थे। --- सिर्फ एक ही मरा, ओह? मेरा यकीन था कि मैंने कईयों को मार दिया होगा। मैं काफी सुस्त रहा हूंगा। तुझे पता? वहां रास्ते पर कई औरतें थी।

इस कार्रवाई में आठ बजकर पचास मिनट हो गए। जोन्स बोला - मैं तुझे कैनन रोअ पुलिस स्टेशन ले जा रहा हूं। वहां तेरे पर सर माईकल ओडवायर को कत्ल करने का मुकद्दमा दर्ज किया जाएगा।

मैंने भी कहा कि - मैं तुझे बताऊंगा, मैंने कैसे अपना रोष प्रकट किया है। मुझे कैनल रोअ पुलिस स्टेशन ले गए। वहां मेरी उंगलियों के निशान लिए। मेरा नाम-गाम पूछ कर सारजैंट जोन्स कहने लगा लिखवा अपना बयान।

मैंने जो बयान लिखवाया वो ये है - मुझे इस बारे में डिवीजनल डिटैक्टिव इंस्पैक्टर सवैन ने सुपरिडैंट सैंडज की मौजूदगी में सचेत किया कि यह वह बयान है कि जिसके आधार पर मुकद्दमा चलेगा। मैं जानता हूं कि जो कुछ मैं कहूंगा, वह अदालत में पेश किया जाएगा।

कल लगभग सुबह 11.39 बजे मैं भारत के आफिस गया, सर हुसन सूरावर्दी को मिलने। गेटकीपर ने मुझे कहा कि वह बाहर गया हुआ है। उसने मुझे इंतजार करने को कहा। मैं वेटिंग रूम में गया, वहां पहले ही तीन-चार लोग बैठे थे। जब मैं बाहर निकल रहा था, तो एक नोटिस लगा देखा - कैक्सटन हाल में एक मीटिंग होगी। मैं बाहर आ गया। गेटकीपर ने कहा कि वह सर हुसन को 3.45 बजे शाम को मिल सकता है। मैं वहां से चल दिया और फिर वापस नहीं गया। मैंने सोचा था कि मैं उसको आज सुबह मिलूंगा, ताकि पासपोर्ट में आ रही दिक्कत के लिए मदद ले सके। सुबह (आज) मैं सर हुसन को मिलने के इरादे से उठा, पर फिर मेरा मन बदल गया। मैंने सोचा कि वह मेरी मदद नहीं कर सकेगा। आज सुबह जब मैं कमरे से निकला तो मैंने सोचा कि लैस्टर स्क्वेयर में पाल रोब्सन की फिल्म देखी जाए। मैं वहां गया। परन्तु सिनेमा अभी खुला नहीं था। मैं फिर घर वापिस आ गया। मैंने सोचा कि शाम वाली मीटिंग में जाऊं। विरोध प्रकट करने के लिए मैं घर से अपना पिस्तौल साथ ले गया, विरोध व्यक्त करने के लिए। मीटिंग की शुरूआत में मैं पीछे खड़ा था। मैंने पिस्तौल किसी को मारने के इरादे से नहीं उठाई, केवल विरोध व्यक्त करने के लिए। खैर, जैसे ही मीटिंग खत्म हुई, मैंने पिस्तौल अपनी जेब से बाहर निकाली और गोली चलाई। मेरे ख्याल से दीवार पर गोली मैंने रोष व्यक्त करने के लिए ही चलाई। मैंने ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत में लोगों को भूख से मरते हुए देखा है। मेरा यह पिस्तौल तीन-चार बार चला। मुझे रोष प्रकट करने का कोई अफसोस नहीं। देश के रोष को व्यक्त करने के लिए इस बात की चिंता नहीं कि सजा होगी। 10, 20 व 50 साल की कैद या फांसी। मैंने अपना फर्ज निभा दिया, पर असल में मेरा मकसद किसी व्यक्ति की जान लेना नहीं था। क्या आप जानते हो, मेरा मतलब तो केवल विरोध प्रकट करना था, आप जानते हो।

देखो मेरे दस्तखत भी हैं इस पर - मोहम्मद सिंह आजाद

मेरे बारे में सारा रिकार्ड इकट्ठा कर लिया। इंडिया से भी मंगवा लिया। कुछ बातें तो ऐसी थी जिसका मुझे भी नहीं पता था। टोटली मनघडंत। पता ही है आपको पुलिस कैसी कैसी कहानियां बनाती है। सारी रिपोर्टों का लब्बो-लुबाब ये था कि इंकलाबी है और हिंसा में विश्वास करता है। मुझ पर केस चल पड़ा।

ओडवायर को गोली मारने पर नेताओं ने मेरी खासी निंदा की थी। उसका मुझे कोई अफसोस नहीं और न ही कोई गिला शिकवा रहा। कुछ ऐसे थे जो वास्तव में ही खून-खराबे को पंसद नहीं करते थे। लेकिन कुछ ऐसे भी थे जो राजनीतिक हालात के हिसाब से ऐसा कर रहे थे। उस समय दूसरा विश्व युद्ध पूरे जोरों पर था। जर्मनी इंग्लैंड की फौजों को पछाड़ रहा था और इंग्लैंड-फ्रांस इस कोशिश में थे कि जर्मनी का मुंह रूस की तरफ मोड़ दिया जाए। सयाने बहुत थे गोरे शासक। एक तीर से दो शिकार करना चाह रहे थे।

ऐसा भी नहीं है कि मेरे कारनामे की सारे ही निंदा कर रहे थे, बहुत लोग खुश भी थे। लेकिन खुशी जाहिर करते कैसे। पहरे लगे हुए थे खुशी पर। डर सच्चा था। लंदन में क्या पूरे इंग्लैंड में ही भारतीयों को शक की निगाह से देखना शुरु कर दिया था। पकड़कर लगते टटोलने।

शासक चाहे कितना ही क्रूर हो और कितना ही तानाशाह। सच्चाई अपना रास्ता बना ही लेती है। अखबारों ने तो घटना को जैसे छापा हो। रेडियो ने भी चाहे अपने तरीके से बताया। एक मेरे आयरिश दोस्त बॉब कोनोली ने बड़ा नायाब तरीका निकाला। उसको याद करता हूं तो उसका मासूम सा चेहरा आंखों के आगे घूम जाता है। सोच भी नहीं सकता था कि वो इतना साहसिक कारनामा भी कर सकता है। उसने हाथ से एक पोस्टर लिखा और अपनी छाती पर चिपका लिया। घूमता रहा पार्लियामेंट और कैक्सटन हाल के बीच। सारे लंदन में चर्चा थी इसकी। अपने खून से चिट्ठी लिखकर मुझे जेल के पते पर भेजी थी। मुझे नहीं मिली। उसके मजमून को पढ़कर मुर्दों में भी जोश आ जाए। लिखा था - 'लांग लिव सिंह', 'डाऊन विद ब्रिटिश इंपीरिलिज्म', 'डाऊन विद ब्रिटिश रूल इन इंडिया'।

मुझे इसका अफसोस नहीं था कि लंदन में और भारत में कथित विभिन्न संस्थाओं के पदाधिकारी व मौजिज लोग मेरे किए की निंदा कर रहे थे। असल में उनको हमेशा सत्ता की नजर देखनी होती है। एक अफसोस जरूर था कि मेरी आवाज अंग्रेजी साम्राज्य फाईलों में ही दबकर रह गई। मेरे देश के लोगों तक नहीं पहुंची।

धन्यवादी होना चाहिए ग्रेट ब्रिटेन की इंडियन वर्कर्स एसोसिएशन के महासचिव कामरेड अवतार सिंह जौहल का। उन्होंने छप्पन साल बाद 1996-97 में उधमसिंह के बयान देश के लोगों तक पहुंचाने में बड़ी मेहनत की।

आप के दिमाग में एक सवाल चक्कर काट रहा होगा। जलियांवाला बाग में गोलियां तो जनरल डायर ने चलवाई थी। वो तो पहले ही मर चुका था बीमार होकर। फिर ओडवायर को गलती से मारा क्या। ये कोई मिस्टेकन आइडेंटिटी नहीं थी। न मैं रक्त पिपासु कीलर था। जनरल डायर या ओडवायर से मेरी कोई व्यक्तिगत दुश्मनी भी नहीं थी। डायर ने जलियांवाला में गोलियां चलवाई तो ओडवायर ने उसके इस कुकृत्य को उचित ठहराया था।

डायर हो या ओडवायर ये सब साम्राज्यी टकसाल में ढले सिक्के थे। उनके नामों और ओहदों का ही अंतर था विचारों और कामों में कोई अंतर नहीं था। सब भारतीयों का मजाक उड़ाते। तिरस्कार करते। मैंने गोली भारत में राज करने वाली साम्राज्यवादी मशीनरी पर चलाई थी। ओडवायर तो उसका प्रतीक मात्र था। फिर गाहे-बगाहे ओडवायर भारत में अपने कुकृत्यों की डींगें भी मारता रहता। कहता कि भारतीयों पर डण्डा -रूल ही उचित है।

शायद मेरी ये सोच भी थी कि पहले विश्व युद्ध के बाद तो अंग्रेजों ने तोहफे में जलियांवाला बाग काण्ड दिया था। दूसरे युद्ध के बाद भी वे बाज नहीं आयेंगे। हो सकता है मेरा सोचना गलत रहा हो पर मैं सोचता था कि फिर हजारों भारतीयों का कत्ल होगा, जैसे कि पिछले युद्ध के समय हुआ था।

मैं सोचता कि अब समय आ गया है कि उठें और उन अंग्रेजी साम्राज्यवादी गिद्धों को दिखा दें कि अब वे लंबे समय तक हमारे लोगों का खून नहीं चूस सकेंगे और न ही लोगों को मेरी प्यारी भूमि से वंचित कर सकेंगे।

मैं ब्रिक्सटन जेल में था। यदि कोई मुझे कैदी कहता तो मैं कहता कि मैं ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया का शाही मेहमान हूं। उन्होंने मेरे लिए काफी अच्छी सुरक्षा कर रखी है। इतने बाडीगार्ड मिले हुए हैं। आरामदायक जगह थी ये पर मुझे तो इससे भी आरामदायक जगह का इंतजार था। आप समझ रहे मैं क्या कहना चाह रहा हूं।

मुझे पक्का यकीन था कि मुझे फांसी दी जाएगी। मैंने पांच साल जेल में काटे थे उस समय सैंकड़ों लोगों को फांसी पर लटकाया गया था। मुझे फांसी का खौफ नहीं था। लार्ड जीसस को भी फांसी दी गई थी। इसलिए मैं कहता कि सिर्फ अच्छे

लोगों के साथ ही ऐसा होता है। बहुत से लोग कहते कि उन्होंने लार्ड जीसस को देखा है। कितने ही सैंकड़ों सालों बाद। लेकिन मैं नहीं देख सका। तभी तो मैं कहता हूं कि ये कोरा झूठ है। मैं सारे संसार में घूमा हूं मुझे वह कभी नहीं मिला। मैं कहता हूं भगवान ने उस कौम के हालात नहीं बदले, जिसके पास बदलाव का विचार नहीं।

जेल के भी कुछ कायदे-कानून होते हैं। कैदी के भी कुछ अधिकार होते हैं। जेल में पुस्तकों के साथ अच्छा समय बीतता है। मैं दोस्तों से पुस्तकें मंगवाता। वे भेजते। पर मुझे नहीं मिलती। मेरी चिट्ठियां ना मिलती। हर रोज नहाने की सुविधा नहीं। दस दिन बाद नहाने को मिलता। मैंने भूख हड़ताल शुरू कर दी। 24 अप्रैल 1940 से। जब मेरा वजन घटने लगा। 9 मई को मेडिकल आफिसर ने जबरदस्ती खाना खिलाने की हिदायत कर दी।

इसके लिए एक स्पेशल कुर्सी थी। भारी सी। उस पर बैठाया जाता। एक बंदा पीछे से सिर पकड़कर ऊपर कर लेता। डाक्टर जबड़ों को खोलता। एक रबड़ की नली गले में घुसेड़कर खाना सीधा पेट में डाल दिया जाता। बड़ा पीड़ादायक होता ये सब। मन खराब हो जाता। उल्टी करने का मन करता। 40 दिन तक रही ये हड़ताल।

मुकदमा शुरु हुआ 4 जून 1940 को ओल्ड बैले की केंद्रीय अपराध अदालत में। ताज बनाम उधम सिंह। जज-एंटकिंसन अदालती कारवाई का लीडर था। ज्यूरी में 10 आदमी और 2 औरतें शामिल थीं। सरकारी वकील थे - मि.जी.बी मैलिऊर, मिस्टर सी हमफरे और मिस्टर जार्डिन। मेरा पक्ष रखा मि. सेंट जोन हुचिकसन, के.सी., मिस्टर आर.ई. सीटन और मिस्टर वी.के. कृष्णा मेनन ने।

अदालत का क्लर्क बोला उधम सिंह पर आरोप है कि आपने 13 मार्च को माईकल फ्रांसिस ओडवायर का कत्ल किया है। इस आरोप के लिए वह सफाई दे रहा है। मैं दोषी नहीं हूं और गवाहियां सुनने के बाद यह साफ हो जाएगा कि यह दोषी है या नहीं।

सरकारी वकील मि. जी.बी. मैलिऊर ने मुकद्दमें की कार्रवाई शुरू की। अदालत में कुछ लोगों को ही पीछे बैठने की इजाज़त दी गई थी और पुलिस प्रत्येक अंदर आने वाले की ध्यान से छानबीन कर रही थी। सुनवाई के दौरान कम ही लोग मौजूद थे। केवल दो भारतीय, एक सिक्ख और एक हिन्दू नजर आए। वे भी लंच टाइम में चले गए। खुफिया रिपोर्ट के अनुसार कि मुकद्दमें की कार्रवाई के दौरान भारतीयों की गैर-हाजरी का कारण यह था कि सूरत अली जो मेरे बचाव के लिए अदालत की कार्रवाई संबंधी प्रबंधों से जुड़ा हुआ था, ने सिखों को चेतावनी भेजी कि वह दूर रहें, नहीं तो पुलिस उनको जांच में उलझा देगी।

जज ने फटाफट गवाहों को अदालत में पेश किया। कुल 24 गवाहों को अदालत में पेश किया। सरकारी वकील मैकलियूर, जज एटकिंसन और मेरे वकील की तरफ से सेंट जोन हुचिंसन ने ओडवायर की हत्या के संबंध में कई सवाल किए। उन सारे गवाहों के बयान मेरे खिलाफ थे।

मैं पूरे धैर्य से गवाहों के बयानों को ध्यान से सुन रहा था।

मेरे वकील सेंट जोन हुचिकसन ने मुझे कटघरे में बुलाने की इजाज़त मांगी। जज ने इजाजत दे दी। मैं कटघरे में गया। अदालत के कर्मचारी ने बाइबल आगे कर दी कसम खाने के लिए। मैंने कहा मेरी बाइबल में कोई आस्था नहीं है। खानापूर्ति करनी है लो कर देता हूं।

मिस्टर सेंट जोन हुचिकसन ने कई सवाल पूछे और जज एटकिंसन ने भी कई सवाल पूछे। शाम हो गई । जज ने अदालत की कार्रवाई 5 जून सुबह 10.30 बजे तक स्थगित कर दी।

अगले दिन 5 जून को अदालत की कार्रवाई दोबारा शुरू हुई। जोन हुचिकसन ने जज को कहा कि मैंने पिछले 42 दिन से खाना नहीं खाया। मैं भूख हड़ताल पर था। शारीरिक कमजोरी महसूस कर रहा था इसलिए इसे बैठने की इजाज़त दी जाए। जज ने इजाजत दे दी। मेरे बचाव के लिए मेरे सिवाए कोई गवाह पेश नहीं किया।

सरकारी वकील मिस्टर मैलिऊर और जज एटकिंसन ने कई सवाल पूछे। गवाही के बाद मुद्दई की ओर से मिस्टर मैलिऊर ने ज्यूरी को संबोधित किया और मिस्टर जोन हुचिकसन ने मेरी ओर से ।

इसके बाद जज एटकिंसन ने मुकद्दमे का सारांश पेश करते हुए कहा जब एक स्वस्थ व्यक्ति जानबूझकर दूसरे को जान से मारता है तो वह हत्या का दोषी होता है। यह कोई घटना या आंशिक घटना नहीं थी। यह जानबूझ कर की गई कार्यवाही थी, क्योंकि आरोपी पूरे हथियार के साथ गया और एक शिकवे के साथ जिसको वह सरेआम मानता भी था। आरोपी को भारत में अंग्रेजी राज से नफरत है, वह मीटिंग में गया, पिस्तौल से गोलियां चलाकर रोष प्रकट करने के लिए।

अमृतसर में हुए कत्लेआम के समय ये वहां अधिकारी थे इसलिए वह जैटलैंड को भी मारना चाहता था। उसके पेट में भी दो गोलियां मारी थी, क्योंकि वह भारतीय स्टेट का सचिव

था।

उसने ज्यूरी को कहा कि अगर आप सचमुच इससे सहमत हों तो आप मुझे हत्या का कसूरवार ठहरा सकते हो।

अदालत के क्लर्क ने पूछा - क्या आप अपने फैसले से सहमत हो? ज्यूरी के फोरमैन ने कहा हम सहमत हैं। अदालत के क्लर्क ने फिर पूछा क्या आपने उधम सिंह को हत्या के लिए दोषी पाया या नहीं? फोरमैन ने कहा- हमने दोषी पाया है। अदालत के क्लर्क ने फिर पूछा आपने इसको हत्या का दोषी पाया है क्या यह आप सबका फैसला है। फोरमैन ने कहा हम सबका यही फैसला है। इस तरह अदालत को कुल एक घंटा 40 मिनट लगे मुझे दोषी ठहराने में।

अदालत का क्लर्क मुझे कहने लगा कि आपको हत्या का दोषी पाया गया है और मेरे पास सफाई में कहने के लिए है ही क्या? अदालत क्यों न मुझे कानून के मुताबिक मौत की सजा दे। मैंने कहा- हां सर, मैं कुछ कहना चाहता हूं। मैंने अपने वकीलों को पूछे बिना चश्मा लगाया और बेझिझक बोलना शुरू कर दिया।

जज बोला - तुम्हें कानून के मुताबिक सजा क्यों न दी जाए।

मैंने अपने कागज निकाल लिए। कागजों को परखा और जज की ओर मुंह करके ऊंची आवाज में एक नारा लगाया - ब्रिटिश साम्राज्य मुर्दाबाद। मैंने कहा -आप कहते हो कि हिन्दुस्तान में शांति नहीं है। हमारे पास तो सिर्फ गुलामी है। तुम्हारी कथित सभ्यता ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमें सिर्फ वह दिया है जो कि मानव नस्ल के लिए कूड़ा-करकट और निकृष्ट है। आपको अपने इतिहास पर भी नजर डालनी चाहिए। अगर आप में मानवीय नैतिकता का जरा भी अंश बचा है तो आपको शर्म से मर जाना चाहिए। अपने आपको संसार के सभ्य शासक कहने वाले कथित बुद्धिजीवी वहशी और खून चूसने के लिए घूमते हैं, असल में हरामी खून हैं।

जज एटकिंसन कहने लगा - मैंने तेरा कोई राजनीतिक भाषण नहीं सुनना। अगर इस केस से संबंधित कोई बात कहने को है तो कहो।

जिन कागजों में से पढ़ रहा था, उनको लहराते हुए मैंने कहा - मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं सिर्फ रोष प्रकट करना चाहता था।

जज एटकिंसन ने कहा - क्या ये अंग्रेजी में लिखा है?

मैंने कहा - जो मैं पढ़ रहा हूं, वह तू समझ सकता है।

जज एटकिंसन ने फिर कहा - अगर तू मुझे यह पढने के लिए दे दे तो मैं ओर अच्छी तरह इसको समझ सकूंगा।

इसी बीच सरकारी वकील जी.बी. मैकलियूर ने जज को कहा आप एमरजेंसी पावर एक्ट की धारा 4 के तहत यह निर्देश दे सकते हैं कि इसके बयान को रिपोर्ट न किया जाए।

जज एटकिंसन मेरी ओर देखकर बोला - तू यह जान ले कि जो कुछ भी तू कह रहा है, वो छपेगा नहीं। तू केवल मुद्दे की बात कर। अब बोलो।

मैंने कहा - मैं तो सिर्फ रोष व्यक्त कर रहा हूं। मेरा यही मतलब है। मैं उस पते के बारे में कुछ नहीं जानता। ज्यूरी को उस पते के बारे में गुमराह किया गया है। मुझे उस पते की कोई जानकारी नहीं है। मैं अब यह पढने जा रहा हूं।

मैं कागजों पर नजर डाल रहा था

जज एटकिंसन ने फिर कहा - ठीक है। फिर पढ़। केवल ये बता कि कानून के अनुसार सजा क्यों न दी जाए।

मैंने ऊंची आवाज में कहा - मैं मौत की सजा से नहीं डरता। यह मेरे लिए कुछ भी नहीं है। मुझे मर जाने की भी कोई परवाह नहीं। इस बारे में मुझे कोई चिंता नहीं। मैं किसी मकसद के लिए मर रहा हूं। कटघरे पर हाथ मारकर मैं ललकारा - हम ब्रिटिश साम्राज्य के हाथों सताए हुए हैं। मैं मरने से नहीं डरता। मुझे मरने पर गर्व है। अपनी जन्मभूमि को आजाद करवाने के लिए मुझे अपनी जान देने पर भी गर्व होगा। मुझे उम्मीद है कि जब मैं चला गया तो मेरे हजारों देशवासी तुम्हें, सड़ियल कुत्तों को बाहर फेंकेंगे और मेरे देश को आजाद करवाने के लिए आगे आयेंगे। मैं एक अंग्रेज ज्यूरी के सामने खड़ा हूं। यह अंग्रेज कचहरी है। जब आप भारत जाकर वापस आते हो तो आपको इनाम दिए जाते हैं या हाऊस आफ कॉमंस में स्थान दिया जाता है। पर जब हम इंग्लैंड आते हैं तो हमें मौत की सजा दी जाती है। मेरा और कोई इरादा नहीं था। फिर भी यह सजा झेलूंगा और मुझे इसकी कोई परवाह नहीं। पर एक वक्त आएगा, जब तुम सड़ियल कुत्तों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाएगा और तुम्हारा ब्रिटिश साम्राज्य तहस-नहस कर दिया जाएगा।

भारत की जितनी भी सड़कों पर तुम्हारे कथित लोकतंत्र और ईसाइयत के झंडे लहराते हैं। उन सड़कों पर तुम्हारी मशीनगनें हजारों ही गरीब औरतों और बच्चों के निर्दयता से कत्ल कर रही हैं। ये हैं तुम्हारे कुकर्म। हां, हां, तुम्हारे ही कुकर्म। मैं अंग्रेज सरकार की बात कर रहा हूं। मैं अंग्रेज लोगों के विरुद्ध बिल्कुल नहीं हूं। इंग्लैंड में मेरे भारतीय दोस्तों से भी ज्यादा अंग्रेज दोस्त हैं। मुझे इंग्लैंड के कामगारों से पूरी हमदर्दी है। मैं तो सिर्फ अंग्रेजी साम्राज्यवादी सरकार के खिलाफ हूं। (गोरे कामगारों की ओर मुखातिब होकर) आप भी इन साम्राज्यवादी कुत्तों व वहशी जानवरों के कारण तकलीफ झेल रहे हो। भारत में

सिर्फ गुलामी, मारकाट और तबाही है। अंगभंग कर दिए जाते हैं। इस बारे में इंग्लैंड में लोग अखबारों में नहीं पढ़ते, परन्तु यह हमें ही पता है कि भारत में क्या हो रहा है।

जज एटकिंसन बोला - मैं ये और नहीं सुनूंगा।

मैंने कहा - तू इसलिए नहीं सुनना चाहता क्योंकि तू मेरे भाषण से ऊब गया है पर मेरे पास अभी कहने के लिए और बहुत कुछ है।

जज एटकिंसन ने फिर कहा - मैं तेरा भाषण ओर नहीं सुनूंगा।

मैंने कहा - आपने मुझसे पूछा था कि मैं क्या कहना चाहता हूं। मैं वही कह रहा हूं, पर तुम गंदे लोग हमारी कुछ नहीं सुनना चाहते जो तुम हिन्दोस्तान में कर रहे हो।

मैंने चश्मा उतार लिया और अपनी जेब में वापस रखते हुए तीन बार बोला - इंकलाब, इंकलाब, इंकलाब। ब्रिटिश साम्राज्य मुर्दाबाद, अंग्रेज कुत्ते मुर्दाबाद, भारत अमर रहे।

जज ने अपना फैसला सुना दिया कि उधम सिंह के संगीन जुर्म के मद्देनजर सजा-ए-मौत दी जाती है। 25 जून, 1940 सुबह 9 बजे तब तक फांसी पर लटकाया जाए जब तक कि जान न निकल जाए।

मैंने कटघरे की रेलिंग पर मुक्का मारा। कानूनी सलाहकारों की मेज पर से ज्यूरी की तरफ थूक दिया। वार्डनों ने बलपूर्वक मुझे वहां से हटा दिया।

जज ने कहा - प्रेस को निर्देश दिए जाते हैं कि कटघरे में उधम सिंह द्वारा दिए गए भाषण के संबंध में कुछ भी नहीं छपना चाहिए।

मैंने जिन कागजों से अपना बयान पढ़ा था, उनको फाड़ कर छोटे-छोटे टुकड़े कर नीचे फेंक दिये। वार्डन ने उनको इकट्ठा कर लिया और उनकी जज ने फोटो खींच ली। जज की टोका-टाकी में मैं तो उन कागजों को अदालत में नहीं पढ़ पाया था। पर आप उनको इत्मीनान से पढ़ सकते हो। उन कागजों में मेरे पूरे विचार तो नहीं आ पाए पर आप उनसे अंदाजा लगा सकते हो मेरी जीवन-दृष्टि का। मेरी सोच का।

हालांकि फांसी का दिन तो 25 जून रखा था लेकिन राजनीतिक हालात कुछ ऐसे थे कि ये डेट 31 जुलाई कर दी थी। मेरे अंतिम संस्कार की इजाजत नहीं दी गई थी। अंग्रेजी शासकों को डर था कि मेरी चिता की लपटों कहीं अंग्रेजी शासन भस्म न हो जाए। मेरे दोस्त जोहल को भी मेरे अंतिम सफर का साक्षी नहीं बनने दिया। सिर्फ इसलिए कि फांसी पर मेरी मुस्कान का तब्सरा कभी अंग्रेजी राज के खात्मे की इबारत ना बन जाए।

मेरे परिवार में कोई नहीं बचा था। मां-बाप-भाई सब गुजर गए थे। मैं एकदम अकेला रह गया था। मैंने मरकर अपना परिवार पा लिया। शहीदों का परिवार। जिंदगी तो मेरी गुमनामी में बीती। पर मौत ने मुझे अमर कर दिया। मजे की एक बात बताऊं आपको। मुझे दफनाया गया था। पता है कहां। पेंटनविल जेल में शहीद मदनलाल ढींगड़ा के बराबर में।

अपने मुल्क को आजाद देखने की मेरी सबसे बड़ी ख्वाहिश पूरी नहीं हुई थी। मुझे यकीन था कि मेरे देशवासी निकट भविष्य में जरूर आजाद हो जाएंगे। मुझे यकीन था मातृ-भूमि सदा के लिए गुलामी का चैंबर बनी नहीं रह सकती।

मरने के चौंतीस साल बाद 19 जुलाई 1974 को मेरी मिट्टी अपने देश की मिट्टी में मिली। मैंने तो नहीं पर मेरी अस्थियों ने जरूर अपने आजाद मुल्क की माटी की छुअन महसूस की।

नफरत से कोई क्रांतिकारी नहीं बनता। जिंदगी व अपने देश के लोगों से बेहद प्यार ही शहादत के रास्ते पर डालता है। मेरी पंसदीदा किताब थी वारिस शाह की - हीर। खासतौर पर काजी और हीर के सवाल-जवाब। उर्दू के शायर थे इकबाल उनका गीत भी मुझे बड़ा पसंद था हमेशा अपने साथ रखता। गाता-गुनगुनाता रहता अकेले में। आज आपके साथ गाना चाहता हूं गाओगे मेरे साथ।

सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ताँ हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिस्ताँ हमारा
ग़ुरबत में हों अगर हम, रहता है दिल वतन में
समझो वहीं हमें भी, दिल हो जहाँ हमारा
परबत वो सबसे ऊँचा, हमसाया आसमाँ का
वो संतरी हमारा, वो पासबाँ हमारा
गोदी में खेलती हैं, जिसकी हज़ारों नदियाँ
गुलशन है जिसके दम से, रश्क-ए-जिनाँ हमारा
ऐ आब-ए-रूद-ए-गंगा! वो दिन है याद तुझको
उतरा तेरे किनारे, जब कारवाँ हमारा
मज़हब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा
यूनान-ओ-मिस्र-ओ- रोमा, सब मिट गए जहाँ से
अब तक मगर है बाकी, नाम-ओ-निशाँ हमारा
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन, दौर-ए-जहाँ हमारा
'इक़बाल' कोई महरम, अपना नहीं जहाँ में
मालूम क्या किसी को, दर्द-ए-निहाँ हमारा
सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ताँ हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिसताँ हमारा।

कहानी

दरअसल

□ तारा पांचाल

(तारा पांचाल 28 मई,1950 – 20 जून, 2009। 'सारिका', 'हंस', 'कथन', 'वर्तमान साहित्य', 'पल-प्रतिपल', 'बया', 'गंगा', 'अथ', 'सशर्त', 'जतन', 'अध्यापक समाज', 'हरकारा' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में पाठक उनकी कहानियों से निरन्तर परिचित होते रहे हैं। 'गिरा हुआ वोट' संग्रह की दस कहानियों समेत तारा पांचाल की कुल चालीस के आसपास कहानियां हैं, जिनमें कुछ अप्रकाशित हैं। तारा पांचाल हरियाणा के जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष रहे। । हरियाणा की साहित्य अकादमी ने भी वर्ष 2007-08 का बाबू बालमुकुन्द गुप्त सम्मान प्रदान करके तारा पांचाल की रचनात्मक प्रतिभा का सम्मान किया। प्रस्तुत है उनकी कहानी - सं.)

यह देखते हुए कि गोष्ठी में राष्ट्रीय स्तर के वैज्ञानिक भाग ले रहे हैं, सैक्रेटरी को मन्त्री जी का समापन समारोह का भाषण तैयार करने में पूरी मेहनत करनी पड़ी थी। देश में अन्तरिक्ष, टेलिविजन, इलेक्ट्रानिक्स आदि के क्षेत्र में वैज्ञानिकों की उपलब्धियों के साथ -साथ प्रधानमन्त्री के जायके का खयाल रखते हुए भाषण में इक्कीसवीं सदी का जिक्र भी लगभग हरेक पैरे में किया गया था। यहां तक कि पूरे भाषण से एक ही बात स्पष्ट हो रही थी- इस मन्त्री की पार्टी की नीतियों के फलस्वरूप ही इक्कीसवीं सदी देश में आ रही थी- अन्य किसी पार्टी की सरकार होती तो जादू-टोने वाला यह देश शायद बीसवीं सदी में ही पांव पीटता रहता। दूसरे, भाषण से यह भी लगता था कि हिमालय की ऊंचाई और गंगा-जमुना की पावन धाराएं भी इस मन्त्री की पार्टी के प्रयासों के फलस्वरूप ही वर्तमान थीं। भाषण के अंत में जैसा कि आम तौर पर होता है, स्पष्ट कहा गया था कि प्रधानमन्त्री की इन नीतियों को फलीभूत करने के लिए देश के वैज्ञानिक आगे आयें...

अपनी कोठी के लॉन में धूप सेंकते हुए मन्त्री जी परसों पढ़े जाने वाले इसी भाषण का पाठ कर रहे थे। उन्हें उच्चारण में या कहीं पर समझने में कोई दिक्कत न आये, सैक्रेटरी वहीं मौजूद था। यूं वह विज्ञान एवं टेक्नोलोजी सम्बन्धी सरकारी आंकड़ों की फाइलें भी साथ ले आया था। उन्होंने चश्मा उतारकर धोती से साफ करते हुए कहा, 'किसान और मजदूरों का थोड़ा कम जिक्र हुआ है - और एक पैरा अगर ये भी जोड़ दो तो ठीक रहेगा कि सरकार वैज्ञानिकों को और अधिक सुविधाएं जुटाने के लिए कृतसंकल्प है ताकि हमारे देश के वैज्ञानिक बाहर के देशों में न जाकर अपने देश की, देश के लोगों की, गरीब किसान और मजदूरों की सेवा में ही रहें...मेरा मतलब है ऐसा ही कुछ...'सैक्रेटरी ने भाषण के पृष्ठ ले लिए, उनमें मन्त्री जी के सुझावों को कहां फिट किया जाये, देखने लगा।

तभी चपरासी एक चिट लिये आया। मन्त्री जी ने चिट को देखा और तटस्थ भाव से कहा, 'कहो, मैं आ रहा हूं।' चपरासी जाने लगा तो कुछ पल सोचकर वे बोले, 'ठहरो, मैं ही जाता हूं...तुम ऐसा करो कि यहीं पर कुछ कुर्सियां और डाल दो और बल्लू को चाय के लिए बोलो', इतना कहकर वे उन्हें लाने के लिए स्वयं ही अपनी कोठी के साथ बने रिसैप्शन में गये और उनके स्वागत में जुट गये, 'आओ जी...आओ सेठ जी...राम-राम जी... नमस्ते जी...नमस्ते -और क्या हाल है...आओ... आओ...इधर बाहर ही बैठते हैं धूप में...आओ... कुर्सियां और रखवाओ यहां और चाय का प्रबन्ध करवाओ...पहले पानी पिलवाओ' उसने सैक्रेटरी को भी बोल दिया जिससे थोड़ा अपनत्व आने के साथ-साथ उनके स्वागत में भी बढ़ोतरी हो गयी थी।

'और सुनाओ जी, हलके की बातचीत...कोई नया समाचार...लो पानी पियो...अं आपका डी.सी. अब तो ठीक चल रहा है ना...होम सैक्रेटरी से भी खिंचवा दिया था उसको...मैंने तो खींचा ही था...अभी जवान खून है ना धीरे-धीरे ठंडा होगा...और, वो एक शिकायत आयी थी, कौन आया था भला...एक्साइज अफसर की शिकायत थी शायद...साला बड़ा ईमानदार का पुतर बनता था...अब तो सैट है न वो...और हां याद आया...एक गणेश रिफाइण्ड ऑयलवालों का मिलावट का केस आया था...उसका क्या रहा...आपका फोन आते ही मैंने एस.पी. और कमिश्नर को फोन तो कर दिया था...इधर भी दे पानी...चाय ला रहा है बल्लू ?...पीछे कुछ दिन हुए अखबारों में आपकी म्युनिसिपेलिटी के सफाई कर्मचारियों के आन्दोलन की भी काफी खबरें आती रही...इनको भी सरकार ने ज्यादा ही सिर चढ़ा लिया है...लो चाय लो जी...लो जी, कोई नी लेता हूं मैं भी...आप भी लो जी...हां अब बताओ कैसे आना हुआ दल-बल के साथ ? हां एक बात और याद आ गयी...पीछे कोई एक परचून वाला आया था...फंसा हुआ था-माप-तोल वालों ने उसके बाट चैक किये तो सब-के-सब कम उतरे। केस बना तो यहां आकर गिड़गिड़ाने लगा। जब मैंने कहा कि गलत काम करते ही क्यों हो तो पट्ठा कहता है - अगर सही होता तो आपके पास आता ही क्यूं...' मन्त्री जी हंसे थे और उनके हंसने के साथ ही वे सब भी मुस्कराये थे। मन्त्री जी हंसते-हंसते ही बोलने लगे थे,

'जैसे हम यहां सारे-के-सारे गलत काम ही करवाने के लिए बैठे हैं।'

हंसते-हंसते ही उन्होंने कप अपनी ओर सरकाया और गम्भीर होते हुए बोले, 'वैसे देखा जाए तो श्रीचन्दजी, निन्यानवे फीसदी इसी तरह के उट-पटांग काम ही हमें करवाने पड़ते हैं...अरे बिस्कुट भी लो ना...कोई बात नहीं ...आप लो...लेता हूं मैं भी...' पूरे वार्तालाप में सेठ श्रीचन्द ही शरीक था, बाकी सब-के-सब उन दोनों पर ही ध्यान केन्द्रित किये हुए थे। जैसे भाव उन दोनों के चेहरों पर आते लगभग वैसे ही भाव उन सबके चेहरों पर भी स्वत: ही आ-जा रहे थे।

'हां, अब बताओ सेठ जी, आज अचानक कैसे आना हुआ ?' मन्त्री जी ने मसूढ़ों और गालों के बीच फंसे बिस्कुट के मैदे को जीभ से इधर-उधर सरकाते हुए पूछा।

'ये हैं जी अपने पंडित देवकीनन्दन जी...आजकल शहर की बहुत सेवा कर रहे है...आप कभी गये हो पुराने तालाब की तरफ, जहां एक बड़े से पीपल के नीचे हनुमान जी की मढ़ी होती थी...वो उधर गोगू बस्ती की ओर जहां हमें सबसे ज्यादा वोट मिले थे...लेकिन मन्त्री जी के चेहरे पर असमंजस देखकर श्रीचन्द ने खुद ही कहा था, 'नहीं , हम इधर से ही वापिस आ गये थे...वह थोड़ा दूर पड़ता है...तो जी इन्होंने खुद घूम-घूम कर लोगों से एक-एक दो-दो रुपया इकट्ठा करके वहां मन्दिर खड़ा किया है और मन्दिर के पिछवाड़े ही अपनी रिहायश भी बना ली है...'

मन्त्री जी ने रिहायश बनाने की बात को लेकर, 'बहुत खूब...बहुत खूब' कहा और बड़े ही रहस्यमय ढ़ंग से मुस्कराकर उस लीडर-सरीखे नौजवान पंडित जी की ओर देखा जैसे मन-ही-मन उसके दिमाग की दाद दे रहे हो और यह सोचकर बराबर का मान रहे हो, 'मैं महात्मा गांधी के नाम का खा रहा हूं और तुम हनुमान जी के नाम का।' पंडित जी ने भी जैसे सब कुछ समझते हुए दोनों हाथ फैलाकर 'सब बजरंगबली की किरपा है जी...' कहा फिर अपने आपको ढीला छोड़ते हुए बुड़बुड़ाये, 'जै हो बजरंगबली महाराज की...सबको सुखी राखियो...खुशी राखियो...'

श्रीचन्द ने फिर कहना शुरू किया, 'लेकिन अभी ना तो मन्दिर ही पूरा हुआ है और ना इनकी रिहायश ही इतनी अच्छी बन सकी है...इन्होंने अब एक बजरंग दल की स्थापना की है और मुझे उसका प्रधान बनाया है...'

'प्रधान' शब्द आते ही अब तक हल्के-फुल्के मूड में बात कर रहे मन्त्री जी सचेत होकर सीधे हुए और पूछा, 'इन निक्करधारियों को तो कहीं हावी नहीं होने दिया दल में ?'

'अजी कहां...हमारे होते...'

'नहीं ...नहीं , इन संधियों को आप नहीं जानते...ये समझते हैं राम, कृष्ण, हनुमान, गीता सब इन्हीं के हिस्से की चीजें हैं...'

'अजी पूछो न...गंगाधर क्रोकरीवाले को उसी के लोगों से वो पटकी दिलवायी कि याद करेगा...हमारा बनाया हुआ 'बजरंग दल' और प्रधान बने संघी', कहकर सेठ श्रीचन्द ने साथ आये लोगों के चेहरों पर देखा जहां उनके लिए 'वाह जी सेठ जी...आप भी अपनी किस्म के एक ही हैं' जैसे भाव थे।

'शाबाश...क्या बात है, मान गये सेठ जी...अरे भई इसीलिए तो हम निश्चिन्त हुए यहां बैठे हैं...हमें पता है आप जैसों के होते हलके में कोई भी गलत काम हो ही नहीं सकता...' मन्त्री जी अब 'हो...हो' करके हंसे थे और खूब हंसे थे, हंसते-हंसते ही उन्होंने चश्मा उतारकर धोती के पल्ले से आंखे पोंछी थी-जो शायद खुशी में नम हो गयी थी। साथ ही वे सब भी हंसे थे।

'अब बात ये है जी कि पिछले महीने इसी बजरंग दल की मीटिंग थी। मीटिंग में हमने फैसला किया था कि इस बार हनुमान जयन्ती समारोह अपने उसी मन्दिर में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाये।' श्रीचन्द ने 'अपने उसी मन्दिर' को जोर देकर कहा।

साथ आये एक और सज्जन ने थैले से एक बड़ा-सा पोस्टर निकालकर मन्त्री जी की ओर बढ़ाते हुए थोड़ा मुस्कराकर बताया, 'मैं प्रचारमन्त्री हूं जी...'और कन्धे पर गड़ रही कागजों से भरे थैले की तनी को थोड़ा सरकाया।

'हुम' पोस्टर पर बनी हनुमान जी की तस्वीर देखकर मन्त्री जी का सिर थोड़ा झुका। इतना अधिक भी नहीं कि साष्टांग प्रणामवाला पुराना फुहड़पन झलके और इतना कम भी नहीं कि हनुमान जी के बुरा मानने का अन्देशा मन में रह जाये। या इन लोगों को भी पता न चल सके। उन्होंने पोस्टर को सरसरी नजर से देखते हुए मेज पर रख दिया। 'विज्ञान एवं तकनीकी संगोष्ठी' के कार्ड पर से पेपरवेट उठाकर पोस्टर पर रखा और अपना चश्मा उतारकर पेपरवेट की जगह उस कार्ड पर रखते हुए बोले, 'हां...सेठजी...तो बताओ मेरे लिए क्या हुक्म है...मैं क्या सेवा कर सकता हूं...आप बतायें पंडित जी, आपने तो अभी कुछ कहा ही नहीं ...'

युवा पुजारी थोड़ा तना। अपने जापानी सिल्क के कुरते की बाजू ऊपर खींची जिससे उसकी कलाई पर बंधी गोल्डन घड़ी चमक उठी। लम्बे-काले बालों में अंगुली फिराते हुए उसने अपने पान रचे लाल होंठ हिलाये, 'सेवा हमारी क्या जी...हनुमानजी की करनी है...जैसा कि सेठजी ने बताया है कि शहर में बजरंग दल

बनाया है...परसों हनुमान जयंती समारोह धूम-धाम से मनाना चाहते हैं...अगर जनाब उसका उद्घाटन कर सकते...'

'परसों...लेकिन...'

'बड़े उपकार का काम है जी...यूं तो आप जानते हैं कि कितने ही मिनिस्टर, एम.एल.ए., एम.पी. पड़े हैं...पर आपकी अपने हलके में और धर्म-कर्म में रुचि है...' पंडित जी की बात बीच में ही काटकर मन्त्री जी ने फिर 'हुम' किया और हुम के साथ ही गरदन भी हिलायी। उनका सारा ध्यान अब मेज पर पड़े हनुमान जी के पोस्टर पर था। जब उनका ध्यान अचानक हनुमान जी के ऐन मुंह पर रखे पेपरवेट पर गया तो उन्हें झटका लगा। धीरे से उन्होंने पेपरवेट मुंह पर से सरकाकर एक ओर हटा दिया और मेज की ओट से ही दोनों हाथ जोड़कर हनुमान जी से इस गलती के लिए क्षमा मांगी।

अब तक वहां बैठे चुपचाप विज्ञान गोष्ठीवाले भाषण में फेर -बदल कर रहे सैक्रेटरी के चेहरे पर उनकी बातों से उलझन उभरी और उसने मन्त्री जी की ओर देखा। उनके चेहरे पर उलझन थी। मन्त्री जी सोच रहे थे-सेठ श्रीचन्द ने इलेक्शन में खुलेआम और पल्ले के नीचे से भी काफी चन्दा दिया था। बदले में इसे स्टील-सीट का कोटा और 'इम्पोर्ट' का लायसेन्स दिलवाकर फायदा तो मैंने भी इसका किया है-इसके और इसके भेजे आदमियों के और कई काम भी करवाये हैं...पर फिर भी आदमी काम आने वाला है...ये पुजारी भी दमदार लगता है...बाकी ये जो आठ-दस आदमी और साथ आये हैं ये भी थोड़े-बहुत दमदार जरूर होंगे...लल्लू-पंजू होते तो श्रीचन्द इन्हें साथ ना लाता। हलके में भी इलेक्शन के बाद लोगों से मिलना नहीं हो सका है। तीसरा साल गुजर रहा है। पता नहीं कब इलेक्शन हो जायें...ये मौका अच्छा है इन लोगों का और जनता का दिल जीतने का...लेकिन विज्ञान गोष्ठी? उसने चश्मा लगाकर गोष्ठी का कार्ड उठाया। सरसरी निगाह से देखा...कोई हल न पाकर फिर रख दिया। 'हलके के एक बार तो दर्शन करने ही चाहिए...ये विज्ञान गोष्ठियां तो चलती ही रहती हैं...संसद में दोबारा तो मुझे ये लोग ही पहुंचायेंगे...ये गोष्ठियां क्या देंगी...आजकल विरोधी पार्टी वाले भी कभी पद-यात्रा कभी जन-सभा अभियान छेड़े हुए हैं लेकिन ये गोष्ठी...और परसों का पूरा प्रोग्राम...ये गोष्ठी भी अभी अडन्नी थी बीच में...पर राजनैतिक रूप से तो मेरा और पार्टी का हित हनुमान जयन्ती समारोह में जाने से होगा...इससे तो हाईकमान भी खुश होगी...ठीक है हनुमान जयन्ती समारोह में ही जाया जाये...' उन्होंने एक बार फिर बड़े गौर से हनुमान जी की तस्वीर को देखा और मन-ही-मन 'पवन पुत्र हनुमान की जै' बोलकर श्रीचन्द से कहा, 'ठीक है सेठ जी , मैं पहुंच जाऊंगा...'

तभी सैक्रेटरी बीच में ही बोला, 'लेकिन सर वो गोष्ठी...परसों सुबह की फ्लाइट से सीट भी बुक है और फिर सारा -का-सारा प्रोग्राम...?'

मन्त्री जी को सैक्रेटरी के टोकने से झुंझलाहट की बजाय भीतर-ही-भीतर खुशी हुई क्योंकि इससे उन लोगों पर और अहसान लद गया था। फिर भी प्रत्यक्षतः यह दिखाने के लिए कि मैं हलके की जनता की खुशी के लिए कुछ भी कर सकता हूं-थोड़ा तल्खी से बोले, 'वो सब देखना तुम्हारा काम है...मुझे अपने लोगों के बारे में भी सोचना है...और फिर सेठ साहब के साथ इतने लोग आये हैं...' उन सभी के हाथ स्वत: ही बंध गये गरदने मन्त्री जी के सम्मान में आधा-आधा इंच और झुक गयीं। 'ठीक है सेठ जी...परसों का पक्का रहा...लेकिन एक ध्यान रखना...परसों नहीं ...मैं शायद कल ही पहुंच रहा हूं...अभी किसी को कुछ नहीं बताना...कल मेरे आने के बाद ही कुछ करना...कहना...।'

'बड़ी मेहरबानी जी आपकी...महावीरजी आपको, आपके परिवार को सदा सुखी रखें...आप जैसे दानी-ज्ञानी परम भक्तों और धर्मात्माओं के सहारे ही पृथ्वी कायम है जी...बजरंगबलीजी आपको तरक्की दिलवाएं, आपके बाल-बच्चों की उम्र लम्बी करें...' कहते हुए पंडित देवकीनन्दन इतना झुके कि मन्त्री जी के पांव छूने को हो गये तो मन्त्री जी ने उन्हें कंधों से पकड़कर सीधा करते हुए कहा, 'अरे-अरे ये क्या कर रहे हो...क्यों मुझ पर पाप चढ़ा रहे हो...पॉव तो मुझे छूने चाहिए आपके...खैर, छोड़ो, ये तो पुरानी बातें हैं...देश इक्कीसवीं सदी में जा रहा है...' फिर भी एकदम श्रीचन्द के कान के पास फुसफुसाये, 'मेरी ओर से हनुमान जी के निमित जो भी दान-वान मन्दिर में या पंडित जी को देना हो वो आप...'

'हां...हां...वो मैं सब कर लूंगा...आप निश्चिन्त रहिये...' और भी कई बातें थीं जो उसी समय एक साथ मन्त्री जी और सेठ श्रीचन्द ने आंखों-ही-आंखों में तय कीं। मन्त्री जी उन्हें गेट पर खड़ी उनकी कारों और टैक्सियों तक छोड़ने आये। हाथ जोड़कर विदा लेते हुए उन्होंने फिर कहा, 'बस यह ध्यान रखना कि कल मेरे आने के बाद ही प्रचार करवाना...'

मन्त्री जी सीधे ड्राइंग रूम में गये। उनके चेहरे पर अब भी उलझन थी। उन्होंने सोफे पर पसरकर सैक्रेटरी को भी वहां बुला लिया। एक नौकर को एक पैग ह्विस्की बनाने को कहा और दूसरे को, दिन होने के कारण पान लेने को दौड़ाया। इनके शुभचिन्तकों का दावा है कि ये दिन के समय कभी नहीं लेते - हां जब भी कभी कोई राष्ट्रीय या अन्तराष्ट्रीय समस्या उन्हें उलझा देती है-तब उस समस्या को हल्का करने के लिए दिन में भी ले लेते हैं

और यह विडम्बना ही थी कि मन्त्री जी इधर काफी दिनों से लगातार ले रहे थे।

सैक्रेटरी गोष्ठीवाला भाषण हाथ में लटकाये खड़ा हुआ मन्त्री जी के अगले हुक्म की प्रतीक्षा कर रहा था। मन्त्री जी ने पैग की चुस्की लेकर एक काजू मुंह में रखा और सैक्रेटरी को शाम तक ही हनुमान से सम्बन्धित तथ्यपूर्ण भाषण तैयार करने को कहा। वे मुंह चलाते हुए समझाने लगे, 'भाषण में रामायण की कुछ चौपाई हों, कुछ अंश रामचरित मानस का वो उतर काण्ड है या दक्षिण काण्ड है, उसमें से ले लेना और हां...खूब याद आया...क्या बात...सोने पर सुहागा...वाह...वाह...क्या मौके पर याद आया है', पैग खाली करके उन्होंने कहना जारी रखा, 'भाषण में 'राम जन्म भूमि मुक्ति' के लिए सरकार के हाल ही में किये गये प्रयासों का जिक्र जरूर करना...और कई बार करना...लेकिन थोड़ा संभलकर और दबी जुबान में...' मन्त्रीजी रुके। काजू चबाते हुए कुछ सोचते रहे। सैक्रेटरी के चेहरे पर उलझन बढ़ती जा रही थी। मन्त्री जी ने उससे धीरे-से पूछा, 'कहीं से हनुमान की जात का सही-सही पता लग सकता है ? रामचन्द्रजी क्षत्रीय थे...भीलनी नीच जात की थी...परशुराम ब्राह्मण थे...नल-नील दस्तकार थे...उनको लुहार या बढ़ई कहा जा सकता है...लेकिन इस हनुमान के बारे में पता नहीं कहीं कुछ लिखा है या नहीं ...कोशिश तो करना...यूनिवर्सिटी के किसी प्रोफेसर को पूछ देखना...शायद कुछ पता चल जाये...सरकार इतना पैसा खरचती है शिक्षा पर तो क्या ये प्रोफेसर आज तक हनुमान की जात का पता नहीं लगा पाये होंगे...' कुछ स्पष्ट नहीं था कि वे बुड़बुड़ा रहे हैं या वे सब सैक्रेटरी को कह रहे हैं।

दूसरा पैग बनाते हुए अपनी इस उलझन को हल्का करते हुए फिर बोले, 'इस 'इक्कीसवीं सदी' ने और तंग कर लिया। अब भाषण तो देना है हनुमान जयन्ती पर, बताओ यहां इक्कीसवीं सदी कैसे घुसेड़ें...?' यह शराब की घूंट बोली थी वर्ना मन्त्री जी इतना बोलने की हिम्मत सपने में भी नहीं कर सकते थे। वे कुछ संभले और तल्खी को दारू की कड़वी घूंट के साथ गटकते हुए बोले, 'ऐसा कुछ लिख देना कि आं...कि देश...हां...माना कि इक्कीसवीं सदी में जा रहा है लेकिन निस्वार्थ सेवा और न्यायप्रियता के प्रतीक अंजनी सुत हनुमान जी को हमारे देश के लिए छोड़ पाना कठिन ही नहीं असम्भव भी है...चाहे वह बाईसवीं सदी ही क्यों न हो...और मेरे खयाल से तालियां भी इसी बात पर ज्यादा बजेंगी...खैर छोड़ो...तालियां-वालियां तो बजती ही रहती हैं...आखिर में थोड़ी-बहुत धर्मनिरपेक्षता की बात जरूर कह देना।' मन्त्री जी अब पूरी तरह उलझन से बाहर थे। उन्हें यदि कोई उलझन थी तो वह थी हनुमान की जात का पता लगाने की...क्योंकि इससे हनुमान की जात की वर्तमान पूरी बिरादरी को खुश किया जा सकता था।

लेकिन यह सब सैक्रेटरी के गले के नीचे उतर ही नहीं पा रहा था। वह मानसिक रूप से भी विज्ञान-टेक्नोलोजी-कम्प्यूटर और इक्कीसवीं सदी में कुछ देर पहले तक इतना रम गया था कि एकदम हनुमान युग में वापिस जाना उसे काफी कठिन लग रहा था। दूसरे, परसों सुबह की फ्लाइट से सीट बुक है, प्रोग्राम के कार्ड बंट चुके हैं...अखबारों वाले भी बात को उछाल सकते हैं...कोई नया रंग देकर भी प्रस्तुत कर सकते हैं..आदि ऐसी ही बातें उसे उलझाये हुए थीं।

मन्त्रीजी ने उसके चेहरे को पढ़ा-उनके होंठो पर मुस्कान आयी, 'इस समय तुम्हारी उलझन वाजिब है...लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है। आओ बैठो...नोटबुक ले आओ...हां अब अखबारों के लिए कुछ न्यूज आइटम तैयार करो। इन्हें तुम खुद अपने हिसाब से वहां के लोकल, कुछ बड़े और नेशनल लैवल के अखबारों में लगवा देना। दो-चार संवाददाताओं को तो अभी फोन कर लेना। मेरी ओर से उनका हाल-चाल ही पूछना-बस, और ऐसा ही एक फोन वहां के हस्पताल के सी.एम.ओ. को भी करना। वह भी कल शाम आयेगा। हां लिखो-पहले कल के लिए-

नम्बर एक-मन्त्रीजी का हलके में अचानक दौरा। जनता में खुशी की लहर।

दो-मन्त्रीजी का हलके में अचानक दौरा। स्थानीय प्रशासन में खलबली।

तीन-मन्त्रीजी का हलके में अचानक दौरा। कई जगह पैदल ही गलियों-मुहल्लों में घूमे।

परसों के लिए-

नम्बर एक-हलके में दौरे पर गये मन्त्रीजी का स्वास्थ्य अचानक खराब। स्थानीय हस्पताल में भर्ती।

दो-मन्त्रीजी के स्वास्थ्य में गिरावट के कारण उनका विज्ञान-गोष्ठी का समापन समारोह का प्रोग्राम रद्द।

तीन-मन्त्रीजी ने आपसी भेदभाव को भुलाकर लोगों को परस्पर प्यार से मिलकर रहने को कहा।

चार-मन्त्रीजी ने धर्म-निरपेक्षता पर जोर देते हुए सभी धर्मों को समझने पर बल दिया।

पांच-मन्त्रीजी ने राजनीति को धर्म से दूर रखने को कहा। हां, एक न्यूज लोकल अखबारों में जरूर लगवानी है-लिखो-रात देर तक लोगों से मिलते रहने के कारण मन्त्रीजी का स्वास्थ्य गिरा लेकिन हस्पताल में भर्ती होने के बावजूद जनता के आग्रह पर मन्त्रीजी ने हनुमान जयन्ती समारोह में भाग लिया।

बस ठीक है, इतना काफी रहेगा।' मन्त्रीजी ने एक पैग और बनाया। सैक्रेटरी को ऑफिस में फोन कर जरूरी फाइलें कोठी पर ही लाने को कहा और सोफे पर पसरकर नये सिरे से हनुमानजी की जात के बारे में सोचने लगे।

साहित्य से जोड़ने के लिए विभिन्न प्रयास करने होंगे

□ रंजना अग्रवाल की स्वामी वाहिद काजमी से बातचीत

(वयोवृद्ध साहित्यकार स्वामी वाहिद काजमी अंबाला (छावनी) में रहते हैं। भारतीय इतिहास व साहित्य के जानकार हैं। भारत की सांझी संस्कृति व उदार परंपराओं को विशेष तौर पर उदघाटन करते हैं। समाज की और विशेषतौर पर नई पीढ़ी की साहित्य से दूरी के प्रति चिंचित हैं। देस हरियाणा के पन्नों पर हमने उनके शोधपूर्ण आलेख प्रकाशित किए हैं। उनके साहित्य व विचारों से लोग परिचित हैं लेकिन उनका व्यक्तिगत जीवन एक रहस्य की तरह है। प्रस्तुत है स्वामी वाहिद काजमी से विशेष बातचीत जिसमें उनके जीवन को जानने की इच्छा रखने वालों की कुछ जिज्ञासाएं जरूर शांत होंगी - सं.)

रंजना अग्रवाल - आपको क्या लगता है कि आज की पीढ़ी साहित्य से दूर क्यों हैं?

स्वामी वाहिद काजमी - ऐसा नहीं है कि युवा साहित्य से जुड़ना नहीं चाहता। लेकिन आज देखता हूं कि युवाओं की रूचि इस ओर थोड़ी कम होती जा रही है। लेकिन अंतत: लौटना किताबों की ओर ही होगा। शैक्षणिक पाठ्यक्रमों को छोड़ दिया जाए, तो युवाओं का रुझान साहित्य की ओर कम होता जा रहा है। यह एक विडंबना है, युवाओं को ये समझना होगा कि जीवन का असली ज्ञान किताबों में ही छिपा है। साहित्यकारों को भी आगे आते हुए आज की पीढ़ी के बच्चे और युवाओं को साहित्य से जोड़ने के लिए विभिन्न प्रयास करने होंगे।

रंजना अग्रवाल - आप अपने साहित्यिक जीवन के बारे में कुछ बताएं।

स्वामी वाहिद काजमी - मूलत: मैं मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले के आंतरी कस्बे का रहने वाला हूं। मेरा जन्म 4 दिसंबर 1945 में हुआ था। कई शहरों में रहने के बाद मैं सन 1989 में अंबाला कैंट आ गया और तब से यहीं हूं। विभिन्न पत्र व पत्रिकाओं में 800 से अधिक कहानियां, लेख व समीक्षाएं इत्यादि प्रकाशित हो चुकी हैं। हिंदी के साथ-साथ उर्दू और फारसी का भी अच्छा जानकार हूं। विगत वर्ष मेरी एक पुस्तक 'सिने संगीत का इतिहास' प्रकाशित हुई है। जबकि कई पाण्डुलिपियां अभी अप्रकाशित हैं। शोध लेख मेरा पसंदीदा साहित्य है।

रंजना अग्रवाल - मेडिकल साइंस के स्टूडेंट होते हुए आप किस तरह साहित्य की ओर मुड़ गए।

स्वामी वाहिद काजमी - मैं मेडिकल साइंस स्टूडेंट था। किसी कारणवश स्नातक नहीं कर सका। लेकिन कहानियां, जासूसी नॉवल, शेरो-शायरी इत्यादि पढ़ने का शौक मुझे बचपन से ही था। उसके बाद मैंने खुद को शोध साहित्य की ओर मोड़ दिया। कई पाण्डुलिपियों पर मैंने शोध किया और फिर उन पर लेख लिखे। एक यायावर की भांति मैंने विभिन्न राज्यों के विभिन्न शहरों में रहकर वहां की लोक संस्कृति, लोक गीत व लोक संगीत पर काफी काम किया है।

रंजना अग्रवाल - एक बड़ा सवाल मन में आता है कि आप सुन नहीं सकते, फिर भी संगीत साहित्य में महारथी हैं। आपको संगीत मर्मज्ञ की उपाधि से भी नवाजा गया है।

स्वामी वाहिद काजमी - श्रवण शक्ति का चला जाना, मेरे जीवन की एक विडंबना है। लेकिन मैंने कभी इसे अपने साहित्यक जीवन में आड़े नहीं आने दिया। मैंने संगीत विषय को बहुत जीया है। इस विषय पर मेरे बहुत से शोध लेख है। मैंने ये साबित किया है कि संगीत विषय पर लिखने के लिए जरूरी नहीं कि संगीत को सुना भी जाए। बस, संगीत को जीना सीख लो,

लेखनी खुद संगीतमयी हो जाएगी है। काका हाथरसी के संगीत कार्यालय की ओर से उनके बेटे डॉ. लक्ष्मी नारायणगर्ग ने मुझे ये अवार्ड दिया था।

रंजना अग्रवाल - आपके नाम में भी बड़ा सवाल छिपा है 'स्वामी वाहिद काजमी' ये बात भी समझ नहीं आई।

स्वामी वाहिद काजमी - वैसे मैं सर्वधर्म को मानता हूं। लेकिन इस बात को झुठला नहीं सकता कि मेरा जन्म एक मुस्लिम परिवार में हुआ है। लेकिन मैं कभी मस्जिद नहीं जाता, इसलिए नहीं कि मैं नास्तिक हूं, बल्कि इसलिए कि मेरे पास वक्त नहीं है। मस्जिद गया, तो मुझे मंदिर की दहलीज भी चढ़नी पड़ेगी, गुरुद्वारे में अरदास भी करनी पड़ेगी और गिरिजाघर में प्रेयर भी। इतना मेरे पास वक्त नहीं। इसलिए जहां हूं वहीं हमेशा खुदा से जुड़ा रहता हूं और सभी की खैर मांगता हूं। रही नाम की बात तो मेरा ये नाम गुरु रजनीश ओशो ने रखा है। ओशो के साथ आठ मिनट की मुलाकात के बाद उन्होंने मेरे नाम के आगे 'स्वामी' लगाते हुए ये कहा था कि अब से तुम्हारा यह नाम हिंदू -मुसलिम एकता की पहचान बनेगा। इसलिए मैं अपना पूरा नाम स्वामी वाहिद काजमी लिखता हूं।

रंजना अग्रवाल - सुना है मरणोपरांत आप अपनी बॉडी भी डोनेट करेंगे, इसकी वजह?

स्वामी वाहिद काजमी - हां, मैंने अपना शरीर सेक्टर 32 जीएमसीएच चंडीगढ़ में डोनेट कर रखा है। यह मेरी शुरू से ही इच्छा थी। मैं चाहता हूं कि जीते जी ही क्यों, वाहिद काजमी का शरीर मरने के बाद भी लोगों के काम आना चाहिए। मुझे अच्छा लगेगा, जब मेडिकल के स्टूडेंट मेरे शरीर पर रिसर्च कर सीखें, आखिरकार मैं भी मेडिकल साइंस का स्टूडेंट जो रहा हूं। यही सोचकर मैंने अपना शरीर दान कर दिया है। इस काम की जिम्मेवारी मैंने अपने दो मित्रों को सौंप रखी है, जोकि मेरे बहुत करीब हैं।

रंजना अग्रवाल - आपकी एक कहानी केरल यूनिवर्सिटी की स्नातक की अंग्रेजी पुस्तक में पढ़ाई जाती है, उसके बारे में बताएं?

स्वामी वाहिद काजमी - मेरी एक बेहद चर्चित कहानी है 'लानत'। इस कहानी के छपने के बाद एक बड़े अंग्रेजी अखबार ने इसका अनुवाद कर उसे अंग्रेजी में प्रकाशित किया। उसके बाद इस कहानी को केरल यूनिवर्सिटी की अंग्रेजी पुस्तक का हिस्सा बनाया गया। ये कहानी एक सच्ची घटना पर आधारित है, जो समाज में ऊंच-नीच की गहरी जड़ों पर चोट करती है। अंत में कहानी इंसान को सोचने पर मजबूर कर देती है कि इंसान अपनी दयनीय हालात के बावजूद किस तरह से संकीर्णताओं में जकड़ा हुआ है और उसे छोड़ना नहीं चाहता।

संपर्क - 8168032431

बाम्हनों के स्वार्थी ग्रंथों की चतुराई के बारे में

□ **जोतिबा फुले**

यह लेप की गरमी में अंगडाई ले सोवे।
नींद कहां से आवे। आलसी को।।
वह ओस से भीगी खेत की मेंड पर।
बैलों को चराता वह। शुक्रोदय में।।
यह गर्म पानी से स्नान करके मुटका तन पर लपेटता।
पीढे बैठ संध्या करता। मौन में सुखी।।
वह ठीक ठाक करता हुआ गाड़ी को हल को।
जोड़ता टूटी रस्सी को। बटता बैठा वह।।
यह पांवों में चमकीला जूता। लांगदार काछी धोती।
सिर पर भारी पगड़ी वाला। ढेरों कपड़े तन पर।।
वह लंगोटी बहादुर वह उधरे नंगे बदन का।
चिंदी की पगड़ी वाला। कंबल मोटा झोटा।।
यह अन्न शुद्धि हित वह मिलाता घी चावल में।
करता नाना विधियां। चित्राहुति भी।।

यह ज्वारी की कनकी छाछ मिला पेट भरे।
चैन सुख कैसे मिले। खेतीहर को।।
वह तकिये से लगाये टेका काम बस लिखने का।
बोली में गर्व भरा। मानों भैंसा मोटा।।
यह नंगे पैरों है चलता हल की मूठ हाथ में ले।
हांकता बैलों को है। गीत गाते-गाते।।
वह थाल और पीकदान, चमचमाता दीपक है।
द्विज निद्रा में खोया है। बिछौने में।।
यह सुखी तंबाकू में चूना मिला कर खाता।
गहरी नींद सोता। मोटे कंबल पर।।
वह अवयवों और बुद्धि में जब दोनों समान हैं।
ब्राह्मण क्यों हुआ है। सुखी इतना।।
यह सत्ता के घमंड में लगायी पाबंदी विद्या पर।
शूद्र चला किये आज्ञा पर। सदा सर्वदा।।

मैं क्यों लिखता हूं?

□ डॉ. दिनेश दधीचि

(दिनेश दधीचि स्वयं उच्च कोटि के कवि व ग़ज़लकार हैं। और विश्व की चर्चित कविताओं के हिंदी में अनुवाद किए हैं, जिंन्हें इन पन्नों पर आप निरंतर पढ़ते रहेंगे। रचनाकार के लेखकीय सरोकार, लेखन से उसकी अपेक्षाएं और लेखक की विश्व दृष्टि उसकी रचनाओं की विषयवस्तु के चयन से लेकर उसके प्रस्तुतिकरण को गहरे से प्रभावित करती हैं। प्रस्तुत है डॉ. दिनेश दधीचि का आत्मकथ्य - सं.)

कई बार हम यह मान बैठते हैं कि हमारे आसपास की चीज़ें और स्थितियां जैसी हैं वैसी की वैसी बनी रहें तो यह उचित भी है और सुविधाजनक भी। हम सोचने लगते हैं कि इसमें हर्ज़ भी क्या है ? क्या परेशानी है ? ऐसे में हम यह भूल जाते हैं कि इन चीज़ों और स्थितियों को अगर वैसे का वैसा छोड़ दें तो ये वैसी नहीं रहेंगी बल्कि ख़राब होने लगेंगी; इनमें विकृतियाँ, सड़न और दुर्गन्ध समा जाएंगे। हम स्वयं चीज़ें नहीं बल्कि सचेत, संवेदनशील, सोचने-समझने वाले इंसान हैं। हमारा हस्तक्षेप चीज़ों और स्थितियों को बेहतर बनाने एवं उनके सकारात्मक पक्षों को बनाए रखने के लिए ज़रूरी है। यह निहायत ज़रूरी है कि हम हस्तक्षेप करें-- विचार से करें, चेतना के विस्तार से तथा ज़्यादा परिपक्व होकर। सारे मानव-समाज के लिए, स्वयं अपने लिए, अपने देश, नगर-गाँव और पूरे माहौल के लिए यह ज़रूरी है। अगर बदलाव की ज़रूरत ही महसूस न हो और बदलाव होने का विश्वास ही न हो, तो किसी भी तरह का सांस्कृतिक-रचनात्मक कर्म व्यर्थ हो जाएगा। कविता-कहानी लिखना मेरी दृष्टि में इसी तरह का एक सार्थक हस्तक्षेप है।

चाहे यह तय है कि अपने व्यक्तिगत-सामाजिक जीवन के यथार्थ से जुड़ा हुआ रचना-कर्म ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है, फिर भी किसी-न-किसी स्वीकृत आदर्श या ऊँचाई की ओर प्रस्थान का उपक्रम कवि या लेखक की रचनाओं में मौजूद रहता है। बदलाव की जिस कोशिश का मैंने अभी ज़िक्र किया है, वह किन्हीं जीवन-मूल्यों और आदर्शों के सन्दर्भ में ही सार्थक हो सकती है। ये कोई बड़े, उदात्त, क्रांतिकारी, रामबाण-तुल्य या चमत्कारपूर्ण आदर्श नहीं, बल्कि रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में अपनाए जाने लायक ऐसे दिशा-निर्देशक स्वस्थ मूल्य हैं, जो अपने समाज की पूर्ववर्ती पीढ़ियों द्वारा इतिहास के लम्बे अरसे के दौरान विकसित किये गए हैं और परंपरा या विरासत के रूप में हमें आज उपलब्ध हैं।

ये मूल्य और आदर्श बेहद सीधे-सादे और सामान्य लगने के बावजूद आधारभूत हैं और अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। जैसे सहिष्णुता और सहनशीलता दोनों ही बातें आज की स्थितियों में ज़्यादा ज़रूरी हो गयी हैं। समाज में, परिवार में, देश में, संसार में अपने से इतर जो ' दूसरे' हैं, जिन्हें हम 'दूसरे' मानते रहते हैं, उनके प्रति स्वागत और खुलेपन का दृष्टिकोण, उनके लिए स्थान छोड़ने व उनका ध्यान रखने की प्रवृत्ति -- इन बातों की आज ज़रूरत है। डर, असुरक्षा, बेचैनी, छीनाझपटी हो या किन्हीं अन्य भीतरी कमज़ोरियों अथवा बाहरी दबावों से उपजी आक्रामकता, असहिष्णुता, नफ़रत और वहशीपन हो-- इन सबसे निजात पाई जा सकती है। इसी विश्वास और आस्था की डोर से बंध कर कविता, कहानी, लेख अदि लिखना मुझे सार्थक ही नहीं, अनिवार्य लगने लगता है।

स्थितियों में बदलाव लाने के उद्देश्य से किया गया किसी भी तरह का हस्तक्षेप तब तक सार्थक नहीं हो सकता, जब तक उसके पीछे स्थितियों की ठीक-ठीक समझ भी काम न कर रही हो। आज के माहौल में समस्या सिर्फ शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि के स्थूल रूप से पहचाने जा सकने वाले विविध रूपों की ही नहीं है, बल्कि हमारी चेतना, जीवन-दृष्टि और संवेदना के विस्तार और गहराई के ख़िलाफ़ काम करने वाले उन सूक्ष्म दबावों तथा छिपे हुए कारकों की भी है, जो न केवल हमारी चेतना को सीमित करते हैं, बल्कि परोक्ष रूप में उसे विकृत भी करते रहते हैं। ऐसे हालात में स्थितियों की ठीक-ठीक समझ बनाना और उनके पूरे परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रख पाना पहले से कहीं ज़्यादा दुष्कर हो गया है।

विगत दो-तीन दशकों में हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में कुछ ऐसे परिवर्तन आये हैं जिन्होंने हमारी जीवन-शैली को प्रभावित करने के साथ-साथ हमारे दृष्टिकोण, मूल्यों, प्रवृत्तियों और चिंतन-पद्धतियों तक को बदल डाला है। पीढ़ियों के आपसी संपर्क-सूत्रों, पारिवारिक संबंधों तथा समूहों के आपसी समीकरणों में भी महत्त्वपूर्ण उलटफेर हो रहे हैं। परंपरा की हमारी अवधारणा और उसके प्रति हमारी दृष्टि भी अब पहले जैसी नहीं रही हैं। स्थूल परिवर्तनों का लेखा-जोखा तो तथ्यात्मक सूचना-स्रोतों से मिल जाता है, परन्तु मूल्यों और दृष्टियों में आ रहे सूक्ष्म परिवर्तनों के वास्तविक स्वरूप को पहचानने का दुष्कर कार्य साहित्यकारों की ज़िम्मेदारी है। अपने समय की धड़कनों को सुन कर और जानी-अनजानी आंतरिक तथा बाहरी शक्तियों

द्वारा परिचालित व्यक्तियों के विविध क्रिया-कलापों की सामूहिकता की नब्ज़ पर हाथ रख कर यह पहचानना कि वस्तुतः किस स्तर पर कहाँ क्या और क्यों हो रहा है --एक बहुत बड़ी चुनौती है।

हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में आज जो प्रवृत्तियां ज़ोर पकड़ रही हैं, उनके कारण स्वस्थ साहित्य की पहुँच निरंतर सीमित होती जा रही है। इसके बावजूद अभी हमारी जिजीविषा, जीवन - मूल्यों के प्रति आस्था और इंसानियत की गरिमा का पूरी तरह क्षरण नहीं हुआ है। साहित्य का आधार अभी सुरक्षित है और जीवन को अधिक सुंदर तथा जीने योग्य बनाने की उसकी सामर्थ्य पर मुझे भरोसा है। बल्कि यह बात मेरे भीतर अटल विश्वास की तरह स्थापित है।

लेखन-कर्म जितना आनंद-दायक अनुभव है, लेखन के बाद पुस्तक के पाठकों तक पहुँचने की सारी प्रक्रिया, कम से कम हिन्दी-जगत में, उतना ही पीड़ादायक अनुभव है। किसी भी लेखक को साहित्य-क्षेत्र में बने रहने के लिए इस दुखद स्थिति को बार-बार झेलना ही होता है। चलिए, प्रकाशक तो, ख़ैर, व्यापारी होता है; समीक्षा तो व्यापार नहीं। परन्तु लगभग शत-प्रतिशत समीक्षा प्रायोजित होती है। क्या यह शर्मनाक स्थिति नहीं है?

हमें लेखक के रूप में पहचाना जाये या हमारी रचनाएँ पढ़ी और पसंद की जाएँ, तो यह हमें अक्सर किसी उपलब्धि जैसा प्रतीत होता है। एक मायने में यह सही भी है। पर मुझे यह एहसास होने लगा है कि साहित्य व संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों की व्यक्तिगत प्रतिभा के कायल होने के साथ-साथ हम अगर इन उपलब्धियों की सामूहिकता को समझें, उसे स्वीकार करें और उस पर ज़ोर दें तो बेहतर होगा। वैसे देखा जाये तो जो हमारा मौलिक लेखन कहलाता है, वह हमारी व्यक्तिगत प्रतिभा की छाप के बावजूद बहुत हद तक हमें अपनी परंपरा, विरासत, अध्ययन, सामाजिक अनुभवों और सोचने-समझने की समाज से प्राप्त हुई पद्धतियों से ही निर्मित होता है।

संपर्क - 93541-45291

आर. डी. आनंद की कविताएं

(आर. डी. आनंद, भारतीय जीवन बीमा निगम, फैज़ाबाद में उच्च श्रेणी सहायक हैं। कवि व आलोचक के रूप में स्थापित हैं। दलित समीक्षा में विशिष्ट पहचान है। उनकी 30 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं। सम्पर्क - 8887749686)

कर्म-फल

मैं कौन हूँ
पुजारी हूँ
तुम कौन हो
आराधक हो
तुम्हें प्रतिदिन मन्दिर में
इन पत्थरों के सामने
सुबह-सुबह स्नान कर
हाथ जोड़ स्तुति करनी है
फल तो तुम्हें मिलेगा ही
कुछ दिन बाद तेरा घर
धन-धान्य से भर जाएगा
मकान पक्का हो जाएगा
तेरा बेटा नौकरी पा जाएगा
बेटी डॉक्टर हो जाएगी
पड़ोसी तुझसे सीखेगा
बगल वाला उससे सीखेगा
गाँव वाले पुण्य-फल देखेंगे
जमाने में शोर हो जाएगा
उनका अनुराग इन पत्थरों में
ईश दर्शन करेगा
मंदिर का गृह गर्भ रुपहला
और देवता सुनहले हो जाएंगे
भूभाग का विस्तार होगा
मिट्टी का कण-कण आशीर्बाद देगा
भीड़ बढ़ जाएगी
नौकर बढ़ा देंगे
प्रबंधन समिति का अध्यक्ष
डिमेंसिया वाला हो तो उत्तम
हम-तुम पूँजी के बराबर के हिस्सेदार होंगे
अमृत सागर की दीवारों से संजय
हमेशा अनुवाद
कक्ष में प्रेषित करता रहेगा
मोरनियों के पर
हिरनियों की आँखे
हस्तिनी की चाल
सुराही की गर्दन
उर्वसी का सरापा
ईष्ट के लिए
अभीष्ट रहेंगे।

ऊँचे पहाड़ मुर्दाबाद

चोटी नुकीली है
और पहाड़ बहुत ऊँचा है
वनों का साम्राज्य सघन है
घाटियाँ फूलों से भरी हैं
खाइयां अंधेरों से और गहरी हो गई हैं
जुगनुओं के चमकने से
पूरा आकाश सूर्य से भर उठता है
जानवर रभांते हैं
लेकिन उछल-कूद कर वे
चोटी को उसकी औकात बता देते हैं
फिर भी पहाड़
अपनी गरिमा के वर्चस्व पर
एक कुटिल मुस्कान छोड़ता ही है
पैर के सामानांतर खड़ा
ब्रह्माण्ड से भी बड़ा तुच्छ मानव
चोटी पर विजय की रुपरेखा नहीं तय करता है
ऊँचे पहाड़ मुर्दाबाद का जयकारा लगाता
रहता है।

फ्लाई किल्लर

□ एस. आर. हरनोट

(एस. आर. हरनोट शिमला में रहते हैं। हिंदी के महत्वपूर्ण कहानीकार के साथ-साथ साहित्य को जन जीवन में स्थापित करने के लिए अनेक उपक्रम करते हैं । साहित्यिक संगोष्ठियां व यात्राएं साहित्य व समाज के बीच जीवंत संबंध पुल बना रही हैं। हिमाचल का जन जीवन विशेषतौर पर जनजातियों-दलित-वंचित समाज की स्थितियां व आकांक्षाएं उनके साहित्य के केंद्र में हैं। वर्तमान दौर में जनविरोधी राजनीति किस तरह से संपूर्ण समाज को प्रदूषित कर रही है इस पर पैनी नजर रखते हुए उन्होंने अपने कहानियों का विषय बनाया है। - सं.)

उस चिनार के पेड़ पर सारे मौसम रहते थे। उसके नीचे लगी लोहे की बैंच अंग्रेजों के ज़माने की थी जिस पर वह बैठा रहता था। वह कई बार अपनी उंगलियों के पोरों पर हिसाब लगाता कि इस चिनार के पेड़ की उम्र इस बैंच से कितनी छोटी रही होगी लेकिन वह सही सामंजस्य नहीं बिठा पाता। वह आस-पास खड़े आसमान को स्पर्श करते देवदारों से बतियाना चाहता, जिन पर वह विश्वास कर सकता था कि इस दुर्लभ चिनार के पेड़ को किस समय और किस मौसम में रोपा गया होगा। वह नगर निगम के माली से भी यह बात पूछ सकता था परन्तु उसे किसी पर विश्वास ही नहीं होता कि कोई इस बारे में सही बता देगा। कुछ भी था वह इस बैंच पर बैठा-बैठा अपने को बहुत स्वतन्त्र और सुरक्षित महसूस किया करता था।

गर्मियां शुरू होने से पहले चिनार पर चैत्र-बैसाख बैठ जाते और उसके सूखे जिस्म से छोटी-छोटी हरी कोंपलें निकलने लगतीं। बैंच पर बैठा वह अपने भीतर बसंत महसूस करता और उसके अप्रतिम सौन्दर्य से अभिभूत हो जाता। हर पत्ते की ओट में उसे ज्येष्ठ और आषाढ़ भयंकर गर्मी की झुलस से छुपते दिखते। हवाएं जैसे तीव्र लू से बचती, उन्हीं के बीच छुप छुपी करती, शीत झोंकों में तबदील होती लगतीं और तीखी गर्मी में उस बैंच पर बैठा वह अपने भीतर गजब की ठंडक महसूस करता। उसके देखते-देखते चिनार के पत्ते पेड़ पर पूरा यौवन बस जाता और सावन-भादों उन्हें अपने आलिंगन में ले लेते। रिमझिम या भारी वर्षा में भी वह अपने रूमाल से बैंच के मध्य भाग को सूखा कर वहां बैठ जाता। इन दिनों उसके पास एक छाता होता। कई बार बादलों की पतली परतें उसके छाते पर इठलाने लगतीं और उसे अपने शरीर में कांटों जैसी हल्की चुभन महसूस होती। उसे अचानक मां याद आ जातीं जो बरसात में अक्सर उसे समझाया करतीं कि रिमझिम वर्षा के साथ जो सफेद धुंई खेतों में पसरी रहती है उसके कांटे बदन में चुभ जाते हैं।

अश्विन और कार्तिक के महीनों का आक्रमण जैसे ही उस हरियाते पेड़ पर होने लगता वह विचलित हो जाता। इन महीनों के साथ माघ और फाल्गुन भी चले आते। चारों मिलकर उस चिनार को नंगा और निर्जीव करने में कोई कसर नहीं छोड़ते। एक-एक करके उसके पत्ते झरते रहते और बैंच के चारों तरफ उनका ढेर लग जाता। वह बैठने के लिए जैसे ही उन्हें हटाने लगता वे अजीब तरह से चीखने लगते। पौष के आते-आते उन पेड़ का कहीं नामोंनिशां नहीं मिलता। माघ और फाल्गुन तो जैसे उसका पूरी तरह चीर हरण कर लेते और वह पेड़ ऐसा लगता जैसे सदियों से सूखा खड़ा हो। निर्जीव। अचेत। निस्तेज। उसकी निराशा, शिथिलता, बुझापन और उल्लासता मानों पूरे परिवेश पर छा गई हो। इन्हीं सभी के बीच वह भी अपने को जैसे निपट नंगा पाता...महसूस करता। उसे ये महीने कई राजनीतिक दल के गठबंधनों जैसे लगते, जिनके मिजाज तो अलग-अलग होते पर उस हरे-भरे पेड़ पर पतझड़ से लेकर शीत-आक्रमण तक वे एकमत हो जाते और उस चिनार के जीवन को विरामित कर देते। पेड़ निर्जीव जरूर दिखता पर वह और अधिक प्रमाणिकता के साथ उन प्रतिकूल प्रहारों को सहते हुए किसी तपस्वी जैसा सम्पूर्ण अक्रीदत के साथ नया जीवन पाने तक विश्रामशील लगता।

★★

उस बैंच पर एक साथ चार लोग बैठ सकते थे। वह लंच टाइम में आकर वहीं बैठ जाता और उन मौसमों को अपने भीतर जीने लगता। उसका बैठना बैंच के मध्य इस तरह होता ताकि उसके अकेलेपन में कोई दूसरा खलल न डाले। वह जितनी बार भी वहां आता उसे बैंच खाली मिलता। शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि उस पर पहले से कुछ लोग बैठे हों और उसे अपने बैठने का इंतजार करना पड़ा हो। कभी जब उस पर कोई बैठा रहता और उसे सामने से बैंच की ओर आते देखता तो वह या कोई भी दो तीन लोग या बच्चे या औरतें या उसके हम उम्र पचपन साल के आसपास के लोग अचानक उठने लगते जैसे वे सभी उसके सम्मान में बैंच को खाली कर रहे हों। उसे अपने होने पर गर्व होता और वह बीच में बैठ जाता। कुछ पल बैठने के बाद

वह मानसिक रूप से स्खलित होने लगता। एकाएक खड़ा हो जाता। अपने कपड़े झाड़ता। अपनी पैंट की जिप को देखता कि कहीं खुली तो नहीं रह गई है। फिर जेब से अपना एंडराएड फोन निकालता और उसकी स्क्रीन में अपना चेहरा देखता। बाल देखता। गले में बंधी टाई हाथ से ठीक करता। अपनी छोटी-छोटी मूंछों को उंगलियों के पोरों से सिधाता। जब पूरी तरह आश्वस्त हो जाता कि उसके यहां होने या बैठने में कोई अवनति, अपकर्ष या अभद्रपन नहीं है जिसकी वजह से वह दुर्यश का कारण बने, वह फिर अपनी पूर्व मुद्रा में बैठ जाता और चिनार के पेड़ पर बैठे मौसम को निहारने लगता।

कुछ देर बैठने के बाद पता नहीं क्यों उसका अर्जित आत्मविश्वास टूटने लगता और आत्मसंदेह में परिवर्तित हो जाता। उसे लगता कि क्या उस के शरीर से कोई अशिष्ट संकेत तो नहीं मिलने लगे हैं जिससे लोग उससे दूरियां बना लेते हैं। वह अपने भीतर की गंध को महसूस करने लगता। कई बार अपने नाक से सूंघने की कोशिश करते हुए जल्दी-जल्दी ऐसे सांस भीतर और बाहर लेता-छोड़ता मानो सुदर्शनक्रिया का अन्तिम चरण पूरा कर रहा हो। बहुत प्रयास के बाद वह अपने को थोड़ा स्थिर और सहज कर लेता और अपने विश्वास को समेटते हुए आश्वस्त हो जाता कि कहीं कुछ ऐसा दुष्कर नहीं है जिससे लोग उसकी उपस्थिति से असहजता महसूस करने लग जाए।

किसी भी काम से यदि किसी ने मिलना होता तो वह डेढ़ से दो बजे के मध्य इसी जगह चला आता और खड़े-खड़े उससे बातें करता। उसे अपने ऑफिस, मित्रों और रिश्तेदारों के बीच कई असामान्य गुणों की वजह से ऐसी मक़बूलियत हासिल थी जो आज किसी में भी विरल देखने को मिलती। हालांकि योजना निदेशालय में वह किसी बड़े पद पर तैनात नहीं था फिर भी कम्प्यूटर विज्ञान में महारत हासिल होने की वजह से उसे इन्फॉरमेशन टेक्नोलॉजी विंग का इन्चार्ज बनाया गया था। इसलिए कम्प्यूटर और इन्टरनैट से जुड़ी तमाम तकनीकें उसे बखूबी मालूम थीं। गूगल जैसी विश्व प्रख्यात साइट से तो उसका रिश्ता दादी-पोते जैसा हो गया था। अपने देश सहित विश्व भर की तमाम जानकारियां उसके ज़ेहन में दादी के उपले में रखी आग की तरह छुपी रहती। बैंच पर बैठा वह कभी किसी को मिलने खड़ा नहीं होता और न ही मिलने वाला उसके अगल-बगल बैठता। लोग उसके पास कई तरह की सलाहें और मशविरें लेने आते रहते जिनमें आधुनिक तकनीक से लैस एंडराएड फोन का कल्चर समझने वाले अधिक होते। किसी का इन्टरनेट नहीं चल रहा होता। किसी की फेसबुक या दूसरे एकाउंट नहीं खुलते। कोई अपना पासवर्ड भूल जाता। कोई अपने थ्री जी फोन को फोर जी में कनवर्ट करने की तकनीक समझता। किसी का फोन हैंग हो जाता तो कोई हिन्दी में टाइप न होने की वजह को जानता-समझता। अब तो लोग विशेषकर उसकी सेवाएं मोबाइल इन्टरनेट बैंकिंग और पे-टीएम को समझने के लिए लिया करते और अपने-अपने बैंक के एकाउंट उससे खुलवाकर साथ-साथ पेटीएम एप भी डाउनलोड करवा लेते। उसके मित्र इस काम के बदले उसे चाय-कॉफी ऑफर करते लेकिन वह साफ मना कर देता। वह इन कामों को करते कभी भी अमृदुल या असहज नहीं होता। वह हमेशा विनम्र बना रहता। किसी ने कभी भी उसके चेहरे पर मायूसी या शिकन नहीं देखी होगी। उसके चेहरे पर हमेशा चिनार के पेड़ की तरह चैत्र-बैसाख बैठे रहते और उस बसंती मुस्कान से उसके मित्र भी उस जैसा बनने का प्रयास करते।

★★

उसकी सेवानिवृत्ति भी उसी मौसम में हुई थी जब अश्विन और कार्तिक के महीनों ने चिनार पर बैठ कर उसके पत्तों को एक-एक कर गिराना शुरू किया था। अपनी सेवानिवृत्ति के दूसरे दिन भी वह पहले की तरह तैयार होकर जब घर से बाहर निकलने लगा तो पत्नी ने पूछ लिया था,

'जी, ऐसे सजधज कर कहां जा रहे हो ?'

उसके कदम ठिठक गए। क्योंकि आजतक तो कभी पत्नी ने इस तरह टोका नहीं था। खड़े-खड़े वह पीछे मुड़ कर उसके चेहरे को गौर से देखने लगा कि कहीं उसकी तबीयत तो खराब नहीं। इससे पहले वह कुछ प्रतिक्रिया देता पत्नी ने उसकी शंका का समाधान कर लिया था।

'आप पिछले कल रिटायर हो गए हैं ?'

रिटायर शब्द ने उसे भीतर तक झिंझोड़ दिया। उसे लगा जैसे पल में ही वह चिनार की तरह नंगो हो गया है। वह उस शब्द की विलोम ध्वनि कुछ देर अपने भीतर महसूस करता रहा। सचमुच उसे बिल्कुल याद नहीं था कि वह अब सेवानिवृत्त हो गया था। अपने को सहज करते हुए वह थोड़ा पास आया और प्यार से समझाने लगा, 'मैं तुम से झूठ नहीं बोलूंगा। सच में मुझे नहीं याद रहा। तुम तो जानती हो 37 सालों तक नौकरी की है और वह भी एक ही दफतर में। अब यह आदत तो धीरे-धीरे जाएगी न। वैसे भी घर से बाहर तो उसी रूटीन में निकलना होगा। नहीं तो कुछ दिनों में ही जड़ हो जाऊंगा।'

'तो लंच साथ ले जाओ। अब दफतर की कण्टीन तो नहीं है कि भूख लगने पर कुछ मंगा लिया।'

पत्नी ने रसोई में जाते-जाते कहा था।

उसे उसकी बात जच गई। पता नहीं कितना समय

लौटने को लगेगा। फिर उसे रिटायरमैंट के बाद के कई काम याद हो आए। अपने पर गुस्सा भी आया कि क्यों उसे इतनी सी बात याद नहीं रही। याद रहती तो पैंडिग कामों की एक लिस्ट ही बन जाती। दफ्तर के भी तो अभी कई काम शेष थे।

इसी बीच पत्नी ने उसे लंच पकड़ा दिया और हिदायत दी कि समय पर खा लें और जल्दी घर आ जाएं।

उसने लंचबाक्स पकड़ कर अपने बैग में डाला और बाहर निकल गया।

बाहर निकलते ही उसे नारों का शोर सुनाई दिया। उसने सामने देखा तो एक विशाल हुजूम गाजे-बाजे के साथ सब्जीमंडी ग्रांउड की ओर जा रहा था। उसे एकाएक झटका सा लगा। उसे याद आया कि पूरे देश में नई पार्टी जीत कर आई है। रिटायरमैंट की पार्टी और मिलने-जुलने आने वाले लोगों की वजह से पिछले दिन उसे याद ही नहीं रहा कि चुनाव में विपक्ष भारी बहुमत के साथ जीत गया है। पिछली रात को उसने पहली बार इतनी थकावट महसूस की कि समाचार तक ध्यान से नहीं देख-सुन पाया। हालांकि उसके कमरे में टीवी नहीं था, वह अपने कम्प्यूटर पर ही इन्टरनैट से यह काम चला लेता था। समाचार तो वह अपने ऑफिस में लगे टीवी पर ही देख लिया करता।

इन्हीं नारों की ध्वनियों के मध्य वह अपने रास्ते चलता रहा। बहुत से खयाल उसके मन में आते-जाते रहे। सबसे आहत करने वाली बात यह थी कि जिस एक पार्टी को वह बरसों से, या आजादी के बाद से वोट देता रहा, वह पूरी तरह हर जगह हारती चली गई। उसे चिनार पर बैठे मौसम याद हो आए कि परिवर्तन तो समय की मांग है, उसे कौन रोक सकता है। लेकिन किसी भरे-भराए पेड़ पर से सारे मौसमों का इस तरह चले जाना दुःखद तो है ही।

आज जब वह उठा तो उसे अपने घर में कई परिवर्तन देखने को मिले। पहले उसका बेटा कमरे में आया। उसके हाथ में पांच सौ और हजार के कई नोट थे। फिर बहू आई और उसके बाद पत्नी। उनके हाथों में भी कुछ नोट थे। बेटे ने ही शुरूआत की थी,

'कैसा लग रहा है डैड फ्री होकर ?'

वह मुस्कुरा दिया था। कहा कुछ नहीं।

'आप जानते हैं कि पांच सौ और हजार के नोट बन्द हो गए हैं।'

उसे झटका सा लगा।

'कब हुआ यह सब....'

'अरे डैड, रात से ही तो टीवी पर आ रहा है।'

उसने कुछ नहीं कहा। वैसे वह इसका बढ़िया जवाब दे सकता था कि घर के दोनों टीवी तो आप लोगों के कमरों में हैं। मनमर्जी के कार्यक्रम देखने के लिए। अब मुझे तो समाचारों के लिए तीसरा टीवी खरीदना होगा। पर वह चुप्पी साध गया।

बेटे ने अपनी पत्नी और मां से नोटों को लेकर उसे पकड़ा दिए थे।

'डैड! ये नोट हमारे पास थे। कुछ मां के पास भी। आपके पास भी तो होंगे ही। अब समय ही समय है। बैंक जाकर इन्हें बदलवा लीजिए। आपकी तो जान-पहचान भी बहुत है।'

अपना-अपना काम बता कर सभी कमरे से बाहर निकल गए। उसे आज अच्छा लगा कि वह अब अपने परिवार के लिए भी समय दे सकता है। उसका छोटा सा परिवार था। बेटा यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर था और बहू एक प्राइवेट स्कूल में अध्यापिका। दो पोतियां थीं जिनकी शादियां हो गई थीं। उसने नोटों को समेटा और अपनी अल्मारी खोली। पांच सौ और हजार के कुछ नोट रखे थे। आज घर में जितना भी धन जिस किसी ने अपने-अपने हिसाब या जरूरत के मुताबिक रखा था वह सभी निकल गया। कुल पैंतालीस हजार के करीब। उसे जोर की हंसी आई कि जीवन कुमार के पास 37 सालों की नौकरी के बाद घर में बस यही काला धन है? उसने पैसों के साथ कुछ दूसरे कागज अपने बैग में डाल दिए। तैयार हुआ और नए काम पर निकल गया।

★★

आज पूरे शहर का माहौल गर्म था। हर तरफ नोटबंदी की चर्चाएं थीं। बौखलाहट थी। मायूसी थी। हड़कंप था। वह सीधा अपने बैंक में गया। वहां देखा तो सर चकरा गया। तकरीबन पांच सौ लोगों का जमघट लगा था। कई लाइनों में लोग खड़े थे। वह भी एक लाइन में खड़ा हो गया। इधर-उधर झांकता रहा। बैंक में बहुत से कर्मचारी थे जो पूर्व में उसकी सेवाएं लेते रहे थे। लेकिन आज कोई दिखाई नहीं दे रहा था। एक दो बार उसने लाइन से बाहर निकल कर बैंक के भीतर जाने का प्रयास किया लेकिन वहां खड़े पुलिस वालों ने रोक दिया। पूरे दिन वह भूखा-प्यासा खड़ा रहा लेकिन उसकी बारी नहीं आई। थका हारा वह घर चला आया।

कई दिनों तक वह उसी रूटीन में बैंक के चक्कर काटता रहा परन्तु नोट बदलवाने या जमा करवाने में कामयाब नहीं हो पाया। घर में सभी आश्वस्त थे कि वह सभी के पैसों को बैंक में या तो जमा करवा लेगा या बदलवा देगा। आज जब वह घर पहुंचा तो सीधा बिना कुछ बात किए अपने कमरे में चला गया।

उसका माथा पसीने से तरबतर था। जितना पोंछता उतना ही गीला हो जाता। अपने को इतना कमजोर और असहाय कभी महसूस नहीं किया जितना उसने इन दिनों बैंक की लाइन में खड़े खड़े किया था। उसने कई बार बैंक में फोन पर बात करनी चाही लेकिन सभी के फोन बंद मिले। दिन को अब वह बेटे के कमरे में जाकर समाचार देख लिया करता था। जिस चैनल पर भी देखो, बैंक के बाहर लम्बी लम्बी लाइनें ही नजर आतीं। कहीं पैसों के लिए झगड़े होते तो कहीं भीड़ पर पुलिस वाले लाठियां बरसाते रहते। फिर खबरें आने लगीं कि लाइनों में खड़े-खड़े कई बुजुर्ग बेहोश होकर मरने भी लगे हैं। उसके मन में अचानक विचार आया कि उसके साथ भी तो ऐसा ही कुछ हो सकता है। वह एक पल के लिए जड़ सा हो गया। दूसरे पल सोचने लगा कि थोड़े से पैसों के लिए वह अपने को क्यों इतना विवश या मजबूर कर देगा कि वह इस परिस्थिति तक पहुंच जाए। लेकिन जिस तरह का माहौल बन रहा था उससे उसे यह चिंता जरूर थी कि वह समय रहते परिवार के इस छोटे से काम को कैसे निपटा पाएगा ? रिटायमैंट से पूर्व ऑफिस में रहते हुए तो उसके सारे काम चपड़ासी या उसका कोई क्लर्क करवा दिया करता। उसके मन में यह भी ख्याल आया कि क्यों न वह अपने दफ्तर जाकर किसी को इन पैसों को दे दे ताकि वह अपनी सुविधा से जमा करवा दें या उन्हें नए नोटों से बदलवा कर उसे दे दे। फिर उसे कई पहले के रिटायर लोगों का ध्यान आया कि जब वे उसके अपने दफ्तर आते थे तो लोग कैसे उनकी उपेक्षा करने से नहीं चूकते। अब वह भी उन्हीं की श्रेणी में शामिल है। .....यह सोचते-सोचते उसे लगा कि वह 'रिटायरमैंट' शब्द कहीं उसकी जीभ पर चिपक गया है। उसने एक दो बार जीभ के मध्य दांत फंसा कर उसे बाहर निकालना चाहा लेकिन वह धीरे-धीरे कहीं भीतर घुसता चला गया था।

★★

आज पहले वह बैंक की कतार में लगा रहा। भारी जद्दोजहद के बावजूद उसकी बारी नहीं आ सकी। फिर थका हारा वह कई दिनों बाद चिनार के पेड़ के नीचे लगी बैंच पर बैठने चला आया। वहां पहुंचा तो देखा कि उस पर सूखे पेड़ की कई परतें जमी पड़ी थीं। पतझड़ के महीनें जैसे हर टहनी पर बैठे उम्रदराज पत्तों को एक-एक करके बेघर करने में लगे थे। वह कभी बैंच को देखता तो कभी नंगे होते उस चिनार को। हल्की सी हवा से कोई पत्ता नीचे गिरता तो उसे लगता जैसे अथाह वेदना से वह कराह रहा है। वह घिसटता, लड़खड़ाता सा अधमरा हो कर दूर-पार चला जाता। हवा तेज चलती तो बहुत से पत्ते भुरभुराकर उसके आसपास और कुछ उसके ऊपर गिरने लगते। उसने देखा कि समय के साथ-साथ कितना कुछ नहीं बदल जाता ? यह सोचते वह 'समय' शब्द पर अटक गया। एक समय था जब वह नौकरी के लिए शहर आया, एक समय था जब उसकी नौकरी लगी, एक समय था जब उसकी शादी हुई और बच्चे हो गए, एक समय यह भी है जब वह रिटायर है और अकेला-अकेला सा चिनार और पेड़ का सहारा ढूंढ रहा है.....असहाय सा बैंक के बाहर लगी पंक्तियों में दिन भरा खड़ा रहता है और अपने ही थोड़े से पुराने नोटों को बदलवाने में नाकामयाब हो रहा है।

पर वह इस मौसम का क्या कर सकता था जो अब चिनार के साथ उस पर भी बैठने लगा था। कई रंजना अग्रवाल उसके मन में आए थे.....कि क्या वह भी इस चिनार का ही कोई प्रतिरूप है......क्या वर्ष भर के सारे मौसम उस पर भी ऐसे ही आकर बैठ जाते हैं........उसका या किसी का भी जीवन इसी चिनार जैसा है.....? उम्र के अंतिम पड़ाव में आदमी का जीवन भी सभी मौसमों से विछिन्न हो जाता है। पर एक मौसम हमेशा उसका साया बनकर उसके साथ अंत तक होता है, कभी विलग नहीं होता--पतझड़। वह निराश होकर कभी उस बैंच को देखता। कभी चिनार को तो कभी अपने ढलते जीवन को। तभी उसे लगता जैसे वह चिनार उससे बतियाने लगा हो.......उस से कह रहा हो कि....देखो मैं भी तो सर्दी में ठिठुरता रहता हूं। सांस भी नहीं ली जाती। फिर भी मुझे डट कर इन प्रतिकूलताओं का सामना करना है, ताकि मौसम खुद-ब-खुद चल कर आए और फिर से मुझे हरा-भरा करे। देखो, मैं कहीं नहीं जाता। एक जगह अडिग रहता हूं। भयंकर अंधेरों में भी। तूफानों में भी। मुसलाधार वर्षा में भी और बर्फ के दिनों में भी।

इन्हीं खयालों में खोया वह बैंच की तरफ बढ़ा और हाथ से सारे पत्ते हटा लिए। फिर अपनी जेब से रूमाल निकाला और उस पर जमी धूल की परत को साफ कर दिया। बैंच पहले जैसा चमकने लगा था। पता नहीं कितने दिनों से उस पर कोई नहीं बैठा होगा।.....क्या लोग अब किसी पेड़ की छांव में नहीं बैठते होंगे.....क्या लोगों ने अब आराम करना छोड़ दिया होगा...क्या अब सभी के भीतर पतझड़ घुस गया होगा.....उसके मन में ऐसे कई विचार कौंधे और चले गए। उसने महसूस किया कि जैसे चिनार और बैंच उसके जीवन के दो छोर हो। एक जीना सिखा रहा है और दूसरा घड़ी-दो घड़ी उस जीने को ठहराव दे रहा है। यह ठहराव आराम है, जो जीवन का अभिन्न अंग है। इसी के साथ उसने एक ओर बैग रखा और बैठ गया था।

★★

आज वह बैंच के मध्य नहीं बैठा। किनारे बैठ गया था।

इसलिए ही कि शायद कोई दूसरा थका हारा, उस जैसा, आए तो पल दो पल यहां आराम कर ले। बैठते-बैठते उसे नई सरकार के बदलने के बाद के कई परिदृश्य याद आ गए। अचानक वह एंटी रोमियो सेना और गौरक्षक की कुछ असभ्य वारदातों के मध्य उलझ गया। पिछली रात जो कुछ समाचार उसने अपने और कई दूसरे शहरों के देखे-सुने उन्होंने उसे बहुत विचलित कर दिया था।...बैंकों के बाहर लम्बी कतारें, लोगों का आक्रोश, पुलिस का लाठीचार्ज और लड़का-लड़की को एक साथ देख कर पुलिस और लोगों द्वारा उनकी पिटाई। वह उन स्मृतियों और छवियों को अपने मन से ऐसे बाहर निकालने का प्रयास करता रहा जैसे कोई कोट पर बैठी धूल को झाड़ता है, लेकिन उन समाचारों या घटनाओं के धुंधलेपन को वह झाड़ने और बाहर निकालने में पूरी तरह नाकाम रहा था। वह उसी तरह बैंच पर बैठ गया कि दो-चार घड़ी सुकून से गुजारेगा।

वह अभी बैठा ही था कि सामने से एक लड़की आती दिखाई दी। उसने अंदाजा लगाया कि उसकी उम्र सात या आठ बरस होगी। उसके हाथ में आइसक्रीम थी। उसकी नजर अचानक लड़की के दांई ओर पड़ी, जहां एक बंदर आइसक्रीम को झटकने की ताक में था। वह झटके से उठा और उसे पकड़कर बैंच तक ले आया। लड़की बंदर को देखकर घबरा गई थी। उसने उसे अपने साथ बिठा दिया। उसका दिल जोर जोर से धड़क रहा था। वह स्थानीय नहीं थी। बाहर से अपने परिजनों के साथ घूमने आई थी। उसने उसकी पीठ सहलाई और ढाढस बंधाया कि उसे डरने की आवश्यकता नहीं है। लड़की थोड़ा सहज होकर जल्दी-जल्दी बची हुई आइसक्रीम खाने लगी। वह इधर-उधर देखता रहा कि उसके परिजन उसे लेने आएंगे पर पता नहीं वह उसे छोड़ कहां निकल पड़े थे। वह यूं ही उससे बातें करने लग गया था।

तभी अचानक दो तीन पुलिस वाले कुछ युवाओं के साथ वहां धमक पड़े। नौजवानों के गले में एक विशेष रंग के पट्टे थे जिन पर लिखा था एंटी रोमियो सेना। उसे कुछ समझ नहीं आया। तभी एक पुलिस वाले ने पूछ लिया,

'तुम्हारी लड़की है'

'नहीं तो...।'

'फिर ये इधर कैसे...'

वह कुछ बोल पाता, पीछे से एक नौजवान ने आकर सीधा उसका कालर पकड़ लिया।

'हम बताते हैं न अंकल। ऐसे ही तुम इसे फुसलाओगे, बहलाओगे और गलत काम करके निकल जाओगे। जानते हैं हम तुम जैसे बूढ़ों को। ले चलो इसे पुलिस थाने।'

उस नौजवान की हरकत से पुलिस वाले एक पल के लिए भौचक्क रह गए पर क्या करते अब माहौल ही इसी तरह का था।

उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है। उस नौजवान ने उसका कालर अभी भी पकड़ा हुआ था। उसने पुलिस वालों की तरफ इस आस के साथ देखा कि वे इस बदतमीजी के लिए उसकी मदद करेंगे। जब कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई तो उसने झटके से उस नौजवान का हाथ कालर से हटा दिया। झटका इतना तेज था कि वह तकरीबन दस फुट दूर औंधे मुंह गिर पड़ा।

'तुमको इतनी भी शर्म नहीं है कि सीनियर लोगों से कैसे बात करते हैं। मैं तुमको बदमाश, गुण्डा दिखता हूं ...?'

कालर सीधा करते हुए वह उन नौजवानों और पुलिस वालों पर टूट पड़ा था। उन्होंने सोचा भी नहीं था कि पतला-दुबला दिखने वाला वह आदमी पल भर में एक हंगामा खड़ा कर देगा। वे कई लोग थे। उसे क्या मालूम कि अब इस तरह कोई अधेड़ या युवा किसी लड़की के साथ नहीं बैठ सकता। साथ नहीं चल सकता। कोई बच्ची भी किसी पराए आदमी के साथ नहीं बैठ सकती।

काफी देर वहां हंगामा होता रहा और आखिर उसे पुलिस वालों के साथ थाने में जाना पड़ा। बच्ची के परिजन अभी भी नहीं आए थे।

पुलिस स्टेशन में जब उसे ले जाया गया तो वह गुस्से से तमतमाया हुआ था। भीतर जाते ही उसने जेब से अपना फोन निकाला और सीधे सिटी के एस0पी0 को लगा दिया। पुलिस वालों ने कभी सोचा भी नहीं था कि इस तरह कुछ हो जाएगा। इससे पहले कि पुलिस वालों को बात समझ आती उसने सारी बात एसपी को बता दी थी। एस.पी ने इस मध्य चौकी इन्चार्ज से बात कर ली थी। चौकी प्रभारी ने स्थिति को ज्यादा बिगड़ने नहीं दिया और समझा बुझा कर इस मामले को खत्म करवा लिया। शायद अब पुलिस वालों और उन नौजवानों को थोड़ा एहसास हुआ होगा कि उन्होंने बिन वजह ही यह हंगामा कर दिया। लड़की अभी भी सहमी हुई थीं। इसी बीच उसके परिजन वहां पहुंच गए थे। पुलिस वालों ने उसे उनके हवाले कर दिया।

इस छोटे से वाकये ने उसे भीतर तक हिला दिया था। वह सड़क पर चल तो रहा था लेकिन उसे लगा जैसे उन नौजवानों के गले के पट्टे उसके अपने गले में फंसने लगे हों। वह चलते-चलते जैसे उनको गले से उतार कर फैंकने की कोशिश कर रहा हो। उसने इस तरह कई बार कोशिश की लेकिन गले में कुछ नहीं था। वह सड़क में सभी से बच कर चल रहा था। विशेषकर उसे कोई बच्ची या लड़की दिखती तो उसकी सांसें

रूक जाती। वह झटपट उनसे दूर हो जाता या भाग कर निकल पड़ता। राह चलते लोगों की आंखें उसे दूर तक जाते देखती रही। उन्हें वह शायद साधारण आदमी नहीं लग रहा था.....कोई मानसिक विक्षिप्त व्यक्ति जो इस तरह की सायास हरकतें करता चला जा रहा है। उसे इस बीच कोई भी परिचित नहीं मिला। वह अपने साथ हुई और अपने द्वारा की जा रही तमाम बातों से इस तरह परेशान हो गया जैसे उसने न जाने आज कितनी शर्मनाक हरकतें कर ली होंगी। शर्म जैसी कोई चीज उसके शरीर और भीतर तक ऐसे महसूस हुई जैसे किसी मोबाइल या कम्प्यूटर में कोई खतरनाक वायरस घुस गया हो। फिर लगा कि यह वायरस कहीं उस नई सरकार के साथ-साथ तो नहीं चला आया है जो इस शहर जैसे कई शहरों में घुस कर उसे अशांत कर देगा। घर तक वह कई ऐसी बातें सोचता रहा था जिनका कहीं कुछ औचित्य नहीं था पर वे जैसे होने को तैयार बैठी थीं। घर पहुंच कर उसे कुछ राहत महसूस हुई पर न जाने क्यों उन पट्टों पर लिखा 'एंटी रोमियो' और थोड़ी देर मस्तिष्क में कौंधा 'वायरस' शब्द उसकी आंखों में घुस गए। वह सीधा बाथरूम गया और पानी से आंखें धोता रहा। वे शब्द अब आंखों के पारों से निकल कर अपने कानों में पसरते लगे। उसने दांए और बांए हाथ की तर्जनी से कई बार कान खुजलाए लेकिन लगा कि वे कहीं उसके भीतर घुस कर बैठ गए हैं।

★★

उस दिन के बाद कई शब्द जैसे उसकी आंख, कान, गले और मस्तिष्क में चिपक गए थे। कभी वे आंखों में चुभने लगते तो अजीब तरह से आंखे इधर-उधर घुमाता। खोलता और बंद कर देता। दूसरे पल कान खुजलाने लगता। उन्हें कुछ पल बंद किए रखता। फिर उसके हाथ अनायास ही नाक के नथूनों को बांए हाथ की तर्जनी और अंगूठे से बंद कर लेते। वह भीतर ही भीतर कपाल-भाती जैसा कुछ करता और जोर से उज्जैयी प्राणायाम की मुद्रा में आ जाता।

आज फिर सीधा वह बैंक चला गया था। लोगों की पंक्तियां अभी भी समाप्त नहीं हुई थीं, जैसे सभी काला धन लेकर बैंक के बाहर खड़े हों। बहुत मशक्कत और जद्दोजहद के बाद भी वह अपने नोट नहीं बदलवा पाया। वह पिछले कई दिनों से देख रहा था कि एक पतली सी अधेड़ महिला लाठी के सहारे जब भी आती तो सबसे पीछे पंक्ति में खड़ी हो जाती। कुछ देर के बाद वह बैठ जाती। फिर उठती और कुछ हिम्मत जुटा कर लाइन में लग जाती। अचानक वह खांसने लगती तो जैसे सारे शरीर का बोझ दोनों हाथों की हथेलियों से जमीन में गड़ाई लाठी पर सिमट जाता। वह काफी आगे लोगों के मध्य खड़ा होकर उसे देखता तो लाइन तोड़ कर उस औरत को अपनी जगह खड़ा करने का प्रयास करता। लोगों की असंवेदनशीलता और अधैर्य इतना हो जाता कि वह जहां से पंक्ति से बाहर होता उस औरत के वहां पहुंचाने तक लोग एक दूसरे से चिपक जाते और उसे उनसे बहुत अनुनय करके उसे वहां खड़ा करना पड़ता। परन्तु वह देखता कि उसका भी कोई लाभ उस बेचारी को नहीं मिलता और वह दिनभर उसी हालत में खड़ी रहती।

एक दिन पंक्ति में खड़ी-खड़ी वह अचानक गिरी और बेहोश हो गई। उसने अपने नोटों की परवाह न करते हुए तत्काल उसे अपनी बोतल से पानी पिलाया और 108 एंबुलैंस को बुला कर अस्पताल भिजवा दिया। वह कभी उससे उसके परिजनों के बारे में भी नहीं पूछ पाया। न ही उसने कभी किसी और को उसके साथ देखा। जब उसे एम्बुलैंस में स्ट्रेचर पर रख रहा था तो उसकी मुट्ठी में एक नोट दिखा। उसने धीरे से उसे खींचा और देखा कि वह पांच सौ का पुराना नोट है। वह अचम्भित रह गया कि महज पांच सौ रूपए के लिए वह बेचारी इतने दिनों से परेशान थीं। उसने नोट को अपने पास रख कर अपनी जेब से सौ-सौ के दस नोट निकाले और 108 में सेवारत महिला डाक्टर की उपस्थिति में उसकी जेब में डाल दिए। वह उस के साथ जाना चाहता था पर खुद भी कई दिनों से नोट बदलवाने और जमा करने के चक्कर में परेशान था। इसलिए उसका जाने का मन नहीं हुआ। उसने देखा कि जहां वह खड़ा था वहां अब लोग एक दूसरे से चिपक गए थे। वह अपनी जगह खड़ा होना चाहता था लेकिन लोगों ने उसे लाइन में पीछे खड़े होने के लिए बाध्य कर दिया। सभी के सामने वह घटना घटी थी और वे जानते थे कि उसने लाइन से बाहर होकर एम्बुलैंस बुलाई थी पर किसी को उससे कोई लेना-देना नहीं था। वह आहत, अपराजित, असहाय सा चुपचाप सबसे पीछे खड़ा हो गया था। अब उसने महसूस किया कि वह अधेड़ औरत उसके भीतर पसर गई है। उसने अपने शरीर को बेतहाशा भारीपन से लबरेज महसूस किया और एक पल के लिए जमीन पर बैठ गया। उसे दिमाग में वह पांच सौ का नोट घुसता महसूस हुआ। इस बीच बैंक में लंच हो गया और सभी को दूसरे दिन आने की हिदायत दे दी गई थी कि आज नोट नहीं बदलवाए जाएंगे।

लोग धीरे-धीरे लाइनों से बाहर हो लिए। सभी के चेहरों पर अपने ही पैसों के बोझ की ऐसी विकट थकान थी जिसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता था। केवल देखा और परखा जा सकता था। महसूस किया जा सकता था। वह बैठा-बैठा सभी के चेहरों की उस थकान को अपने भीतर कुछ देर जुगालता रहा और फिर ऐसे उठा जैसे टांगों में जान ही नहीं रह गई हो। उसका

एक मन हुआ कि वह अस्पताल जाकर उस औरत की सुख-सांद लें पर दूसरे पल सोचा कि इतने बड़े अस्पताल में बिना उसका नाम-पता जाने उसे कहां तलाश करेगा।

चलते-चलते उसने अपने भीतर पता नहीं कितने शब्द उठते-बैठते, बिलखते, अटपटाते, चीखते, विलगते महसूस किए थे........सरकार, रोमियो, नोटबंदी, पुलिस, लड़की, आईसक्रीम, चिनार, मौसम, 108 एम्बुलैंस और पांच सौ का नोट.....ये शब्द नहीं जैसे नुकीली छुरियां हों जो उसे भीतर ही भीतर घोंपती चली जा रही हो।

★★

थका हारा वह बैंच तक गया और हाथ से पत्तों को साफ करके वहां बैठ गया। अब पत्ते कम होने लगे थे। जैसे वे अपने-अपने घर चले गए हों और जो कुछ बिरल चिनार की टहनियों और बैंच तथा उसके आसपास थे वे मानों किसी का इंतजार कर रहे हों।

संयोग से उस दिन उसे मिलने कोई नहीं आया। उसे पेड़ पर हल्की सी कांव-कांव की आवाज सुनाई दी। ऊपर देखा तो एक कौवा बैठा उसी की तरफ नीचे देख रहा था। सोचा वह भूखा होगा। उसने उठ कर पास वाली दुकान से एक बिस्कुट का पैकिट लिया। उसे खोला और दो बिस्कुटों को कुतर-कुतर कर बैंच के बांए किनारे डाल दिया। कौवा पेड़ से आकर उन्हें खाने लगा। इसी तरह लगभग पांच मिनट की अवधि में उसने कौवे को सारे बिस्कुट खिला दिए। वह खुश हुआ कि उसकी सेवानिवृत्ति के बाद बैंच और चिनार के साथ उसका एक और दोस्त भी हो गया है। वह इस बात के लिए अपने को धन्य समझ रहा था कि उसने अपने पित्रों को आज खुश कर दिया है। बचपन में स्कूल के समय जब गांव में श्राद्ध होते तो उसकी दादी और अम्मा दोनों मिलकर पहले कौवों को खाना खिलाया करतीं थीं। दादी एक थाली में रोटी के टुकड़े करके आंगन की मुंडेर से 'आओ कागा, आओ कागा, बोल कर आवाजें लगाती तो कई कौवे पलक झपकते ही वहां आ जाते और सारी रोटियां खा जाते। उसके बाद जब वह शहर आया, जैसे कौवों को देखना ही भूल गया। कभी कभार ही ऐसा होता कि कोई कौआ उसे कहीं पेड़ पर चुपचाप बैठा दिखाई देता। उनकी नस्लें जैसे गुम होने लगी थीं। कौवा तो उड़ गया था लेकिन 'कौआ' शब्द उसके सीधे मन में बैठ गया।

वह बैंच से उठा और घर की तरफ चलने लगा। बैग में रखा पुराने नोटों का बंडल इस दृष्टि से देखा-छुआ कि कहीं गिरा तो नहीं दिया है। एक छोटे से काम के लिए इतनी मशक्कत उसे शायद ही जीवन में करनी पड़ी हो। आज वह इसलिए भी अपनी ही नजरों में अपमानित महसूस कर रहा था कि पहली बार वह अपने परिवार का इतना छोटा सा काम नहीं कर पाया है। चलते-चलते किसी ने उसे बताया कि जिस अधेड़ महिला को उसने अस्पताल भिजवाया था वह अब नहीं रही।

'वह बेचारी अपने सांजे हुए पैसे के लिए मर गई।'

उसकी आंखें भर आईं थीं। वह उसे नहीं जानता था पर एक इनसानियत का रिश्ता तो था ही। फिर वह तो अभी भी शब्दों में उसके भीतर जिंदा थीं। उसे एकाएक वह कौआ याद आ गया। शायद वह मौत का संकेत लिए वहां आया होगा। उसे एक पल के लिए अच्छा लगा कि उस महिला के लिए ही कहीं वह बिस्कुट का श्राद्ध तो नहीं लगा होगा। अब दो और शब्द उसके भीतर पसर गए थे। श्राद्ध और कौआ। पर उन सब पर भारी 'मौत' शब्द था जिस पर वह कई तरह से सोच रहा था। यह बात उसके भीतर कहीं चिपक गई थी कि इस आजाद देश में और वह भी इक्कीसवीं सदी के समय में कोई अपने ही पैसे बैंक से लेने लिए कैसे मर सकता है ? पर सच तो यही था।

वह आज बहुत निराश, आहत और दुखी मन से घर पहुंचा। कई पल दरवाजे के बाहर ऐसे खड़ा रहा जैसे किसी अजनबी घर के बाहर खड़ा किसी का पता ढूंढ रहा हो। बहुत हिम्मत से उसने डोरबैल दबा दी। पत्नी ने दरवाजा खोला था। आज पत्नी ने उसे नहीं टोका कि नोट बदले या नहीं। वह जानती थी कि इन दिनों किसी बुजुर्ग का लाइन में खड़ा होना कितना खतरनाक हो रहा है। टीवी पर दिखाई जाने वाली खबरों से वह पूरी तरह वाकिफ हो गई थीं। वह दबे पांव हारा हुआ सा अपने कमरे में चला गया। आज उसे दरवाजे के पास बूट खोलने की याद भी नहीं रही। उसकी पत्नी ने ही उसके बूट उतारे थे और सामने एक पानी का गिलास रख दिया था। उसने एक ही घूंट में पूरे गिलास को भीतर उड़ेल दिया। बहुत राहत मिली उसे। लगा कि जितने भी शब्द भीतर जोश में उछाल मार रहे थे, वे पानी में कहीं विलुप्त हो गए हैं।

★★

उसे नींद आनी कम हो गई थी। वह देर रात तक खबरें देखता और सुनता। उसने अपने जीवन में अखबार और टीवी समाचारों को कभी इतनी गंभीरता से नहीं लिया था, जितना अब लेने लगा था। पहले तो काम के बोझ से वह समय ही नहीं निकाल पाता था। उसने आज एक टीवी रिपोर्ट देखी थी जिसमें भारत में हुए आतंकी हमलों के साथ-साथ दुनिया में हुए कुछ बड़े नर संहारों को भी दिखाया गया था। साथ ही अपने देश में किसानों को किस तरह आत्महत्या करने के लिए विवश होना पड़ रहा है, इस पर कुछ निष्पक्ष विशेषज्ञों की बहस आयोजित की गई थी। 1990 के बाद जिस तरह की परिस्थितियां देश में

उत्पन्न हुई, उसने अब तक लाखों किसानों को आत्महत्या करने पर विवश कर दिया। सत्ताएं अपने स्वार्थ और अतिजीविता के लिए कितनी क्रूर और आततायी हो सकती हैं, ये रिपोर्टें उसका अभूतपूर्व उदाहरण थीं।

एक चैनल पर देश में मासूम लोगों पर गौ-रक्षकों के हमलों से मारे गए कुछ अल्पसंख्यक और दलितों के बारे में रिपोर्ट दिखाई जा रही थी।

वह इन रिपोर्टों को देखकर बहुत विचलित हो गया था। उसके दिमाग में पहले से घुसे कई शब्दों के बीच अब आत्महत्याएं, आतंकी हमलें, नरसंहार और गौ-रक्षक जैसे शब्द ऐसे घुस गए थे कि वह बार-बार उन्हें याद करके भयभीत होने लगा था। इन शब्दों को अपने दिमाग से कई बार बाहर निकालने का प्रयत्न किया पर उसे लगा जैसे ये शब्द फेबीकोल के जोड़ की तरह मजबूती से भीतर फंस गए हैं।

उसने अपना कम्प्यूटर बंद कर दिया और अरामदेय कुर्सी पर पीछे की तरफ गर्दन लटकाए आंखे बंद करके बैठ गया। उसने लाइट बुझा दी थी। वह चाहता तो अपने दिमाग को आराम देने की गरज से सो भी सकता था परन्तु उसे लगा कि वह कुर्सी पर आगे-पीछे झूल कर थोड़ी राहत महसूस कर लेगा। पर ऐसा नहीं हुआ। उसका विचलन बढ़ता ही गया। उसने जो टीवी में देखा था और जो कुछ समय-समय पर अपनी स्मृतियों में संजोया था उसके धुंधले से परिदृश्य भीतर उमड़ने-घुमड़ने लगे थे। उसे पहले मुंबई का छब्बीस ग्यारह याद आया। फिर अमेरिका का नौ ग्यारह और पेशावर के स्कूल में मारे गए बच्चे याद हो आए। फिर न जाने दुनिया के कितने आतंकी हमलों ने उसे घेर लिया। उसने अपने भीतर ऐसा घमासान महसूस किया जैसे अभी एक विस्फोट हो जाएगा और अपने घर समेत उसके परखचे उड़ जाएंगे। उसने अंधेरे में ही मेज पर रखी पानी की बोतल का सारा पानी एक सांस में गटक लिया। भीतर ऐसे लगा जैसे ठंडा पानी गर्म तवे पर गिरा हो। वह अप्रत्याशित काले धुंए के मध्य घिर गया और कुर्सी से उठ कर बदहवास सा अंधेरे कमरे में भागता रहा। कुछ देर बाद अचानक एक निस्तब्धता कमरे में पसर गई। उसने सोने का जैसे ही प्रयास किया उसके सिरहाने दुनिया के कई नरसंहार आकर बैठ गए थे।

उसे पहला विश्वयुद्ध याद आया जिसमें अंदाजन एक करोड़ लोगों की जानें चली गई थीं। इससे कहीं अधिक बीमारियों और कुपोषण से मर गए थे। आर्मीनिया उस समय आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से बेहद सम्पन्न था। यह नरसंहार आर्मीनियाइयों के प्रति तुर्की सरकार की गहरी नफरत का नतीजा था। वह यह सोचकर दहल गया कि किस तरह सैंकड़ों लेखकों, पत्रकारों, वैज्ञानिकों और अन्य बुद्धिजीवियों को पकड़ कर विशाल रेगिस्तानों में मरने के लिए छोड़ दिया गया था। मजदूरों और आमजन तो कीड़े-मकोड़ों की तरह मसल दिए गए थे।

अब दूसरे विश्वयुद्ध का नरसंहार हिटलर के रूप में उसकी छाती पर बैठ गया। उसकी आंखों में करीब सात करोड़ लोगों की लाशें तैरने लगी। हिटलर उसे बहुत याद आया क्योंकि वह अपने ऑफिस में अपने कई उच्चाधिकारियों को हिटलर के नाम की संज्ञा देकर नवाज चुका था। हिटलर ने किस तरह अपनी डेथ यूनिट्स को बेरहमी से यहूदियों को कत्ल करने के आदेश दे दिए थे और देखते ही देखते साठ लाख से ज्यादा यहूदियों को बेरहमी से मार दिया गया। उसके तुरन्त बाद उसे हिरोशिमा और नागासाकी याद आ गए। उसका कलेजा जलने लगा जैसे वह भी कहीं 'लिटल बॉय' और 'फैट मैन' परमाणु बमों के ध्वंस के मध्य आखरी सांस ले रहा हो। उसकी सांसे तेज-तेज चलने लगी थीं। वह बिस्तर से उठना चाह रहा था लेकिन उसे लगा कोई भारी चीज उसे दबाए हुए है।

काफी देर बाद वह उठ कर बैठ गया था। उसने शांत होने के लिए ओम का मन ही मन उच्चारण आरम्भ कर दिया। लेकिन वे नरसंहार पहले से ज्यादा मुखर होकर कमरे के अंधेरे खोह में विचरने लगे और एक-एक कर पुनः उसके कानों से होते हुए मस्तिष्क में घुसने लगे थे। इस बार उसे चीन के नरसंहार ने परेशान किया जो दुनिया के सर्वाधिक क्रूरतम नरसंहारों में से एक था। उसे अचानक चीनी साम्यवादी नेता माओत्सेतुंग याद आ गए। जिसने भी माओ की सरकार का विरोध किया था वे मौत के घाट उतार दिए गए।

तदोपरान्त उसके दिमाग में बारी-बारी चलचित्र की तरह युगोस्लाविया, यूगांडा, पूर्वी पाकिस्तान, चिली, कंबोडिया, इथोपिया, इरान, अफगानिस्तान, श्रीलंका और फिलीस्तीन के नरसंहार घूमने लगे थे। उसने मन को थोड़ा एकाग्र और शांत करने के लिए भ्रामरी प्राणायाम का सहारा लिया। उसी बीच वह अपने बाल्यकाल में लौट आया जब वह 10-12 साल का रहा होगा। उसके दादा उस समय शहर में एक अंग्रेज अधिकारी के पास रसोईए का काम करते थे। देश आजाद हुआ तो उसके दादा का अंग्रेज अफसर भी देश छोड़ कर चला गया। दादा फिर काम की तलाश में शहर ही रहे। दादा बताते थे जब देश का बंटवारा हुआ तो कितने लोगों का कत्ल हो गया। भाई-भाई, पड़ोसी-पड़ोसी एकाएक कैसे एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए थे।

अब वह भ्रामरी मुद्रा में ही 1984 में पहुंच गया। उसके सामने हजारों सिक्ख भाईयों की लाशों के ढेर बिछ गए। फिर वह 2002 में चला आया और मुसलमान भाईयों के कत्लेआम का

साक्षी बन बैठा। वहां से निकला तो किसानों की आत्महत्याओं के मध्य फंस गया। एक पल उसे लगा जैसे वह अपने ही पंखे से लटक गया है और घुट-घुट के मर रहा है। उसने भ्रामरी मुद्रा तोड़ी और दोनों हाथों से गला ऐसा पकड़ा जैसे फांसी की रस्सी को खींच कर निकाल रहा हो। पर वहां कुछ नहीं था। उसकी गर्दन में अथाह पीड़ा होने लगी थी। वह महसूस करने लगा कि उसके पास लाखों का कर्ज है.....साहुकारों और बैंक के दलाल हाथ में डंडे लिए उसके दरवाजे पर खड़े हैं.....जैसे वे उसकी ज़मीन हथिया लेंगे...गौशाला से बैलों को खोल कर ले जाएंगे...उसकी पत्नी और बेटियों से बदसलुकी करेंगे.....? मानो अब उसके पास कोई रास्ता नहीं है और वह अपने कमर में लपेटी चादर को पेड़ में बांध कर उस में लटक गया है....?

उसे महसूस हुआ कि उसका रक्तचाप बढ़ रहा है। उसने तत्काल बिजली जला दी थी। वह दूसरे कमरे में सोई पत्नी को उठा कर रक्तचाप मापने की मशीन को मंगाकर अपना रक्तचाप देखना चाहता था लेकिन उसकी नजर जब घड़ी पर पड़ी तो वह रूक गया। रात का एक बज रहा था। उसने बिजली बुझा दी और पुनः सोने का प्रयास किया। लेकिन नींद कोसों दूर भाग गई थी। अंधेरे में जैसे ही आंखें बंद कीं उसे कुछ बड़ी राजनीतिक और बौद्धिक हत्याएं याद आ गई। उसके मस्तिष्क में पहले कई राजनेता आए और बाद में एक-एक कर सफदर हाशमी, दाभोलकर, पानसरे और कलबुर्गी बैठ गए। वह सोचता रहा कि स्वतन्त्र अभिव्यक्ति, विचार, लेखन और अभिनय भी कितने घोर अपराध की श्रेणी में आते होंगे कि उसके लिए सत्ता या उसके अंधभक्त उनका खून कर दें। वह सिहर उठा। उसे अपने शरीर में ऐसी कंपकपी महसूस हुई कि बाहर बर्फ गिर रही हो। उसने पास पड़ी रजाई से अपने शरीर को ढक लिया। धीरे-धीरे मन का विचलन, मस्तिष्क की थकान और परेशानियां उसकी आंखों के भीतर पसरने लगी और वह बेहोशी की जैसी हालत में अपने को महसूस करने लगा। अचानक उसे जयपुर में गाय खरीदते हुए पहलू और उसके चार साथी याद आ गए। उसके बाद राजस्थान का अलवर, आन्ध्रप्रदेश का पूर्वी गोदावरी जिला और गुजरात का ऊना याद आया जहां गौ-रक्षकों ने दलितों की न केवल पिटाई की बल्कि कुछ को मार भी दिया था। उसे इस तरह के अनगिनत किस्से याद आए जो सरकार के बदलने के बाद इस देश में आए दिनों हो रहे थे।

★★

उसे नहीं पता सुबह कब हो गई। परन्तु उसकी आंखों में नींद की वजह से अजीब सी ऊंघ पसर गई थीं। वह रात भर जो कुछ भी मन की आंखों से देखता रहा उसकी धुंधली सी छवियां अभी तक आंखों में बसी थीं। उसने उठ कर कई बार आंखों में पानी मारा और कुछ देर पलकों को यूं झपकाता रहा जैसे उनके बाहर-भीतर नरसंहार और हत्याओं के कुछ बारीक कतरे फंसे हों।

वह रोज की तरह तैयार होकर बैंक के लिए चल दिया। उसने अपने बैग में रखे पुराने नोटों के बंडल को हाथ से छुआ। आश्वस्त होकर बाहर निकल गया। पत्नी ने उसके चेहरे पर जब नजर डाली तो घबरा गई। उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह एक रात में ही इतना कैसे बूढ़ा गया है। उसका मन हुआ कि उसे आज न जाने के लिए कहें, पर पैसे याद आ गए। समय रहते नहीं बदले तो नोट बेकार हो जाएंगे।

अपने से उसने पूरा प्रयास किया कि वह जल्दी जाकर बैंक की पंक्ति में खड़ा हो जाए, लेकिन आज भीड़ पहले से ज्यादा थीं। उसने देखा कि पंक्तियों में असंख्य बिहारी, नेपाली और उत्तर प्रदेश के मजदूर अपनी पासबुकें हाथ में लिए खड़े हैं। कई नेपाली औरतों की पीठ पे बच्चे हैं। उसी भीड़ में कई गांव के किसान भाई भी हैं। मजदूरों का कहना था कि वे अपने खाते बंद करवा रहे हैं क्योंकि अब शहर में काम नहीं रहा। ठेकेदारों के पास पैसे नहीं है। वे अपने-अपने गांव लौट जाएंगे। किसान कह रहे थे कि बिना पैसों के उनके छोटे-छोटे काम रूक गए हैं। खेतीबाड़ी चौपट है। ब्याह-शादियां बंद हो गई हैं। यहां तक कि दो जून की रोटी भी नसीब नहीं हो रही। उसके साथ ही दो-तीन पत्रकार भाई भी थे, जिनके चेहरे से लग रहा था कि उनकी कलम कई दिनों से उनके झोले में बंद पड़ी है और वे लाइनों में या तो नोट बदलवाने या कुछ पैसे निकलवाने के लिए रोज आकर खड़े हो जाते हैं।

उसका मन लाइन में खड़े होने का नहीं हुआ। उसने दो -चार चक्कर भीड़ के आसपास ऐसे लगाए जैसे वह किसी अखबार का रिपोर्टर हो या किसी एजैन्सी का निरीक्षक। उदास-हताश वहां से आते हुए उसका मन कॉफी पीने का हुआ। पहले उसने सोचा कि वह कॉफी हाउस चले लेकिन वह आज किसी शांत-एकांत जगह पर बैठना चाहता था। कॉफी हाउस के मिजाज से तो वह वाकिफ था कि वहां कितना शोर होता है।

चलते-चलते अब उसके मस्तिष्क में मजदूर, किसान और पत्रकार-लेखक जैसे कुछ और शब्द पसर गए थे जो भीतर पहले विराजमान शब्दों पर भारी पड़ते महसूस हुए। उसे पंक्तियों में इसी तरह के आमजन खड़े मिल रहे थे। जो सम्पन्न थे, या रसूखदार या राजनीति से जुड़े नेता या अफसर, उन्हें तो उसने कभी पंक्तियों में खड़े नहीं देखा। वह सोचने लगा कि क्या यह नोटबंदी हम जैसे आम लोगों के लिए ही है...क्या उन लोगों के

पास....पांच या हजार रूपए के नोट नहीं होंगे......क्या उन्हें पैसों की आवश्यकता नहीं होगी...?

यह सब सोचते हुए वह शहर के सबसे बढ़िया रेस्तरां में घुसा और एक किनारे की मेज पर बैठ गया। वेटर ने जैसे ही पानी के गिलास के साथ मैन्यू मेज पर छोड़ना चाहा उसने कोल्ड कॉफी का आर्डर दे दिया। वह यह तय करके कतई नहीं आया था कि कोल्ड कॉफी पियेगा। उसे यदि कुछ ठंडा ही लेना था तो वह बाहर आईसक्रीम या साफ्टी भी ले सकता था, यह सोचते हुए उसे पास ही से 'चट' की आवाज सुनाई दी। यह उसे साधारण आवाज नहीं लगी। पता नहीं इस आवाज में ऐसा क्या था कि वह सीधे उसके मस्तिष्क में चुभती हुई दिल पर बैठ गई। उसने सामने ध्यान से देखा। वहां फ्लाई किल्लर लगी थी जिसके समीप जैसे ही कोई मक्खी जाती, चट की आवाज से उसके छिछड़े उड़ जाते। हालांकि उसने किसी मक्खी को मरते हुए नहीं देखा था परन्तु उस मौत की आवाज ने उसे परेशान कर दिया। इसी बीच वेटर कॅाफी लेकर आ गया और मेज पर रखते हुए उसने दो सौ रूपए थमाकर बिल काटने के लिए कह दिया। जैसे ही उसने कॉफी का गिलास मुंह तक लाया पुनः दो-तीन आवाजें उससे टकरा गईं। उसने पूरा गिलास पानी की तरह गटक लिया और यह भी नहीं सोचा कि आस-पास बैठे लोग उसे क्या कहेंगे ? उसने बकाया पैसे भी नहीं लिए और रेस्तरां से उन मौत की भयंकर आवाजों के साथ बाहर निकल गया। एक जगह खड़ा होकर सोचता रहा कि मौत किसी की भी हो शायद उसकी आवाजें ऐसी ही होती होंगी। उसे चिनार से अलग होते पत्तों का स्मरण हो आया और दिमाग पर जोर देकर सोचता रहा कि इस तरह की असंख्य आवाजें उसके भीतर पहले से मौजूद हैं। उसे एक पल के लिए अपने ऊपर गर्व हुआ कि वह दुनिया का शायद पहला आदमी होगा जिसने मौत की आवाज को इतने करीब से महसूस किया है। वह जानता था कि आए दिन रेस्तरां में ये आवाजें बहुतों के कानों तक जाती होंगी लेकिन उनके लिए तो ये आम आवाजें होंगी......केवल एक मक्खी के मरने की आवाज भर।

वह जिस शांति के लिए रेस्तरां में गया था उसे उन मौत की आवाजों ने भंग कर दिया था। वह अशान्त मन से उसी बैंच पर बैठने चला आया। उसने देखा कि चिनार बिल्कुल नंगा हो गया था। बैंच के ऊपर और आसपास कुछ पत्ते जरूर औंधे मुंह से पड़े दिखे जिन्हें न जाने कितने पैरों ने मसल दिया होगा। उसके भीतर, बैंच पर बैठते-बैठते, उन पत्तों के मरने की आवाजें पसर गईं। वह उनकी वेदनाओं में खो गया। आज चिनार के पेड़ से पत्तों का यूं विलग हो जाना उसे अच्छा नहीं लगा। न ही रेस्तरां में उन निर्दोष मक्खियों का मरना ही। उसकी आंखें भर आईं। वह बहुत देर गर्दन झुकाए रोता रहा था। चिनार की तरह का अकेलापन उसने अपने भीतर महसूस किया। उसे पहली बार ऐसी आतंकानुभूति हुई जो इससे पूर्व उसने कभी महसूस नहीं की थी। वह अपने भीतर के इस मनोविकार में कई कुछ तलाशने लगा था....मन की अस्थिरता...... मस्तिष्क का असंतुलन...न्यूरोसिस या साइकोपैथी जैसा कुछ...या फिर इस चिनार के साथ-साथ उस पर वर्ष भर के मौसमों ने उसकी ज़ेहनीयत या मनोवृत्ति को बिल्कुल तबदील कर दिया है। वह अपने भीतर रिटायरमैंट से पूर्व के जीवन कुमार को ढूंढने लगा जो उसे कहीं नहीं मिला। उसकी जगह उसे अकर्मण्यता, अचेतनता, अजीवंतता, अवसाद और निराशा के चक्रव्यूह में फंसा एक दूसरा ही आदमी दिखाई दिया। वह कई बार खड़ा हुआ और बैंच के दांए-बांए बैठता रहा। उसने अपने को स्थिर करने का भरसक प्रयत्न किया। इस ठहराव में उसे एक बात यह सूझी कि वह व्यर्थ इतनी दुनिया की चीजों को अपने भीतर घुसा बैठा है जिसका शायद कोई मतलब नहीं हो....वह आग को शायद अपने दामन में ढकने का प्रयास कर रहा है। उसने एक गहरी सांस ली और आंखें बंद कर लीं। उसे पता ही नहीं चला कि कब उसकी आंख लग गई और किसी अचम्भित करने वाले स्वप्नलोक में चला गया।

★★

स्वप्नलोक में उसने जिस दुनिया में प्रवेश किया वह उसके अपने देश जैसी नहीं थी। क्योंकि बचपन से लेकर सेवानिवृत्ति तक जो कुछ उसने देखा या महसूस किया उस जैसा वहां कुछ नहीं था। अपने देश में तो वह अभी 4-जी में ही जी रहा था जबकि जिस दुनिया में वह चला आया था वह 11-जी से भी आगे की दुनिया थी। वह यह देख कर स्तब्ध था कि इस अत्याधुनिक तकनीक से सम्पन्न इस दुनिया के राजा को किन्हीं तीन लोगों की तलाश थीं जिन्होंनें उसका जीना हराम कर रखा था।

उसने अपने को जहां खड़ा पाया, सामने भीतर प्रवेश के लिए एक विशालकाय गेट था जिसे सोने, चांदी और हीरों से मढ़ा गया था। उसके बीच कई रंगों में नहाई कुछ पक्तियां लिखी थीं जो रोशनियों के साथ रंग बदलती रहती थीं। शीर्ष पर लिखा था ---11 जी राष्ट्र। बहुत संकोच से उसने जब भीतर प्रवेश किया तो उसे किसी ने नहीं रोका। वह बहुत भय और संभल के चला जा रहा था। परन्तु सड़कों पर चलते हुए उसे गजब का सुकून महसूस हो रहा था। बहुत देर तक वह इसी में खोया रहा। अचानक कोई चीज उससे टकराई और वह गिरते-गिरते बचा।

इधर-उधर देखा, कुछ दिखाई नहीं दिया। वह आगे चलता रहा। चलते-चलते उसे महसूस हुआ कि उसके कंधो पर कोई चीज है। उसने कई बार अपने कंधे उचकाए। गर्दन आड़ी-तिरछी की। आगे-पीछे मुड़ा। सिर कई बार झाड़ा। लेकिन वह कुछ ऐसा था जो कंधे से हिलने का नाम नहीं ले रहा था। परेशान होकर जब वह एक पेड़ के नीचे खड़ा हुआ तो उसे एक आवाज सुनाई दी जिसे वह पहचान गया....कौए की आवाज। वह सोच में पड़ गया कि इस नई दुनिया में कौवा कहां से आ गया। कुछ और सोच पाता, कौवा आदमी की आवाज में बोलने लगा था।

'सुनो जीवन कुमार! मैं भी तुम्हारे साथ हूं। तुम्हारे कंधे पर हूं। मैं पिछले कई सालों से भटक रहा था कि मुझे कोई सुरक्षित जगह मिले। मैं अब तक बहुत मुश्किल से अपने को बचाते हुए जिंदा हूं।'

'पर कैसे ?'

'मेरे पास उस राजा के कोट की 11-जी चिप जो है।'

'मतलब....'

'जैसे टू जी, थ्री जी, और फिर फोर जी। तुम तो अपने देश में फोर जी के माहिर थे। तुम्हारे देश में यही सबकुछ तो चल रहा है। बच्चों और बूढ़ों के हाथों में अब फोर जी-फोन हैं। लेकिन इस दुनिया में तो लोग ग्यारह जी तक पहुंच गए हैं।

उसकी समझ में कुछ नहीं आया। कंधे उचकाते हुए चिढ़ कर उसने पूछा था,

'तुम क्या बक रहे हो मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ रहा है ?'

'बताता हूं, बताता हूं। सब बताता हूं। मैं जानता हूं, तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। सुनो मैं विस्तार से समझाता हूं।'

कौवा उसे पूरी कहानी सुनाने लगा था -

इस दुनिया का जो राजा है वह पहले नमक बेचता था। उसने धीरे-धीरे इस धन्धे से अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया और नमक के व्यापार में देश-विदेश में मशहूर हो गया। वह जिसे भी नमक देता वह उसका दिवाना बनता गया। इसी नमक और अपने वाग्जाल की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते वह राजनीति में पहुंच गया। उस राजनीति की कई सीढ़ियां थीं। घर। पड़ोस। गांव। पंचायत। नगर। शहर। जिले। राज्य और उसके बाद देश। वह धीरे -धीरे देश के आखरी पायदान तक पहुंच गया और देश का एकस्व मुखिया बन गया। अपने झूठे प्रपंच और अनेक कारनामों से उसने देश में ऐसा जादू फैलाया कि वह उस देश का राजा घोषित हो गया। उसने अपने साथ बुर्जुवा किस्म के लोगों को लिया जिसमें अभिजात और रईस किस्म के लोग मौजूद थे। पूंजीवादी समाज का शासक वर्ग और उत्पादन के समस्त साधनों के स्वामी थे। उनके पास इतना पैसा था कि वे देश की 90 प्रतिशत जनता पर भारी थे। उन्होंने उस राजा को राजा बनाने के लिए पानी की तरह पैसा बहाया और अत्याधुनिक तकनीक से लैस कर दिया।

लेकिन जैसे-जैसे दिन गुजरते रहे, उसके आगे अनेक समस्याएं खड़ी हो गई। उसके देश में पच्चास प्रतिशत से ज्यादा ऐसे लोग थे जो भूखे थे। नंगे थे। गरीब दलित थे। किसान-मजदूर थे। लेखक पत्रकार थे। हड़तालें होती थीं। विपक्ष किसी को चैन से नहीं रहने देता था। एक तरफ उन साधन सम्पन्न लोगों का पैसा किसी न किसी योजना में लाभ देकर चुकाना था तो दूसरी तरफ वहां गरीबी और बेकारी की समस्याओं से निजात पाना था। धर्म और जाति के नाम पर रोज-रोज दंगे फसाद हो रहे थे। किसानों के पास जमीनें थीं पर वे अन्धाधुंध कर्जो में डूबे हुए थे। आए दिनों वे आत्महत्याएं कर रहे थे। उनकी जमीनों पर उन चन्द बनिया किस्म के लोगों की नजरें गड़ी थीं जो वहां बड़े-बड़े उद्योग लगाना चाहते थे। कामगरों के हाथों का काम अत्याधुनिक मशीनें छीने जा रही थीं। हर तरफ आक्रोश का माहौल बन रहा था। आतंकवाद जोरों पर था। लोग मर रहे थे। पानी के लिए लड़ रहे थे। धर्म एक दूसरे का दुश्मन हो गया था। ईश्वर और जानवरों के प्रतीक भयंकर नर संहार की ओर अग्रसर थे।

इसीलिए राजा इन सभी समस्याओं से अलग व मुक्त दुनिया बनाना चाहता था। उसकी सोच में फटेहाल लोगों के लिए कोई जगह नहीं थी। वह नहीं चाहता था कि कोई गरीब या नंगा भूखा उसकी दुनिया में रहे। वह जानता था कि यदि गरीब मजदूर और किसान रहेंगे, विभिन्न संस्कृतियां और धर्म होंगे तो अखबारों और पत्रकारों की दुनिया चलेगी। नेताओं की दुनिया जीवित रहेगी। उसकी इच्छा थी कि उसका एकछत्र राज हो जहां ऐसी सम्पन्नता हो कि सभी के पास ऐशो-आराम के साधन हों।

वह चुपचाप कौवे की कथा सुन रहा था। हालांकि उसके मन में कई प्रश्न थे पर वह शांत बना रहा। कौवा बताए जा रहा था......

अब समस्या यह थी जीवन कुमार कि इन सभी मुसीबतों से राजा को मुक्ति कैसे मिले...? इन्हीं समस्याओं से निजात पाने के लिए उसने एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया जिसमें महज उसके बेहद विश्वसनीय तीन लोग थे। उन्हें इस काम के लिए पूरी छूट और सुविधाएं दी गई।

इससे पूर्व उस राजा को किसी ने एक ऐसा सूट भेंट किया था जिसमें उस देश की पच्चास प्रतिशत जनता जितने राजा के नाम बहुत ही बारीक शब्दों में लिखे गए थे। राजा जहां

भी उसे पहन कर जाता वाह वाही हो जाती। उस सूट को पहन कर उसने जिस भी देश की यात्रा की, वही उसका दीवाना होने लगा। लेकिन करोड़ों रूपए के उस सूट ने राजा का जीना हराम कर दिया। देश के आमजन की नजरें उस पर थीं। सभी उसे शक से देखने लगे थे। समाचारों में अब केवल वह सूट ही था। हर आदमी की जुबान पर वह चढ़ गया था। परेशान होकर राजा ने उस सूट को नीलामी के लिए एक उद्योगपति को दे दिया। वह जानता था कि राजा के इस कोट की करोड़ों की बोली लगेगी। परन्तु जो तीन लोगों की समिति राजा ने बनाई थी उन्होंने उस सूट की नीलामी को रूकवा दिया था।

'पर क्यों....?'

उसने थोड़ा रूक कर कौवे से पूछा था।

'बताता हूं, बताता हूं...जल्दी भी क्या है...?'

वे कई आलीशान रेस्तरां में जा कर मन्त्रणा करते कि इन समस्याओं से कैसे छुटकारा पाया जा सकता है। एक दिन वे एक सात सितारा होटल के आलीशान रेस्तरां में उच्चकोटि की शराब और खाना ले रहे थे। हालांकि उन तीनों की पसन्द एक दूसरे से नहीं मिलती थीं पर सोच में वे एक समान थे। पहला केवल 'पेनफोल्ड्स एम्पूल वाइन' पीता था जो पेन की शेप जैसी बॉटल में आती थी और उसकी कीमत एक करोड़ ग्यारह लाख तक थी। दूसरा सदस्य उससे हल्की शराब का शैकीन था जिसका नाम 'शैटियू डी क्यूम' था जो 85 लाख से ऊपर कीमत की थी। तीसरा शराब का ज्यादा शौकीन नहीं था पर उसे बीफ के साथ 'द विंस्टन कॉकटेल' चाहिए होती जो नौ लाख से ज्यादा की कीमत की थी। अक्सर वह 80 हजार रूपए कीमत वाली 'वियल बॉन सीकॉर्स ऐल' बीयर ही पीता था।

उन में से एक की नजर सामने लगी मक्खीमार मशीन पर चली गई। वह उठा और कई पल मशीन के पास खड़ा रहा। उसने होटल के मालिक से मशीन के निर्माता के बारे में पूछा और आदेश दिए कि उसे होटल में बुलाया जाए। आदेशों का तत्काल पालन हुआ। मशीन निर्माता कुछ पलों में वहां पहुंच गया। वह जानता था कि उसकी बैठक आज देश के तीन उच्च राजनेताओं से होने वाली है जो राजा के विशेष दूत हैं। उसने विनम्रता से अपने को उनके सामने प्रस्तुत कर दिया।

बातचीत शुरू हुई। यह अति गोपनीय मीटिंग जिस कमरे में हो रही थी वहां किसी को भी आने की अनुमति नहीं थी।

'तो यह मक्खीमार मशीन आपने बनाई है ?' पहले सदस्य ने पूछा।

'जी सर! यह हमारी कम्पनी की ही क्रिएशन है। हमने देश के हर छोटे बड़े रेस्तरां और होटलों के लिए यह मशीन सप्लाई की है। इसमें अब अत्याधुनिक किस्म के कई फीचर शामिल कर दिए गए हैं।'

'वैरी गुड, वैरी गुड।'

दूसरे ने शराब की घूंट पीते हुए कम्पनी मालिक की पीठ थपथपाई।

'तो इसमें मच्छर और मक्खियां ही मरती होंगी ?'

तीसरे ने बीफ के टुकड़े को मुंह में ठूंसते हुए पूछा।

'जी सर। पर इस मशीन की यह खासियत है कि यह दो फुट की दूरी पर से मक्खी और मच्छर को अपनी ओर घसीट कर मार देती है। साथ ही छिपकली जैसी कई चीजों को तो इतनी फुर्ती से निगलती है कि सांप भी देखता रह जाए।'

'एक्सेलैंट जाब डन।'

उसने सोने की डिबिया से दुनिया की सबसे महंगी सिगरेट डनहिल ब्रांड निकाली और उसी डिबिया के किनारे लगे एक माइक्रो लाइटर से सुलगा दिया। उसके कश लेते हुए जब कई रंगों के धुंए निकलने लगे तो बाकी बैठे लोग थोड़ा हैरत में पड़ गए। उसने एक-एक सिगरेट सभी को थमा दी थी।

पहला सदस्य उठकर मशीन के पास चला गया। उसने कुछ दूरी पर अपना हाथ रखा तो उसे अजीब सी झनझनाहट महसूस हुई। उसने हाथ थोड़ा आगे किया तो ऐसा लगा कि उसके हाथ को कोई अदृश्य तरंगें चुम्बक की तरह अपनी ओर खींच रही हों। वह एकाएक हंस दिया। कई पल की उस हंसी में दोनों सदस्य और मशीन निर्माता भी शामिल हो गए। काफी देर ठहाके लगते रहे। लेकिन उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि पहला सदस्य हंस क्यों रहा है। इस हंसी के बीच सभी ने खूब शराब पी।

लड़खड़ाती आवाज में पहला सदस्य मशीन मालिक की ओर झुका,

'एक्सेलैंट। मक्खीमार यानि फ्लाई किल्लर।'

'सुनो'।

उसने मशीन निर्माता को पास खींचते हुए कहा,

'देखो हम तुम्हें मुंह मांगी कीमत देंगे। पर इस मशीन को 'फलाई किल्लर' से 'वेस्ट किल्लर' में विकसित करना होगा।'

'वेस्ट किल्लर'...?

'मतलब बेकार की चीजों का खात्मा।'

'पर सर वो तो पहले से हमारी कम्पनी बना रही है। उन्हें कूड़ा संयन्त्र कहते हैं। जिसमें देश का कूड़ा खपाया और जलाया जाता है।'

'वही तो, वही तो। हम भी देश के बेकार हो रहे 'जीवित

कूड़े' को खपाना चाहते हैं और फ्लाई किल्लर से बेहतर विकल्प क्या हो सकता है ?'

एक पल के लिए भीतर सन्नाटा छा गया।

दोनों सदस्यों के साथ मशीन मालिक की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

चुप्पी देख कर पहले सदस्य ने फिर जोर के ठहाके लगाए। उसके साथ वे तीनों भी ठहाकों में लीन हो गए।

थोड़ी देर बाद पहले सदस्य ने समझाना शुरू किया,

'ध्यान से सुनो। ये जो फ्लाई किल्लर मशीन है, आपको इसकी तकनीक बदलनी होगी। इसे आपको अत्याधुनिक रूप से विकसित करके जी-11 यानि ग्यारवीं जनरेशन तक पहुंचाना होगा। हम वैसे भी अब 4-जी से धीरे-धीरे वहीं पहुंच रहे हैं। यह एक मानव आकार में परिवर्तित होनी चाहिए। जिसमें विशेष प्रकाश की ट्यूबें लगाई जाएंगी। उस मशीन में अत्याधुनिक कम्प्यूटर फिट होंगे जो तकरीबन सौ फीट से किसी भी अवांछित को अपनी गिरफ्त में लेकर पहले अदृश्य करेंगे और बाद में मक्खी की तरह चूस लेंगे, लेकिन उसमें कोई आवाज नहीं आनी चाहिए। वह साइलैंण्ट किल्लर की तरह काम करेगी।'

'क्यों नहीं सर, बिल्कुल हम बना देंगे। मेरे पास दुनिया के बेहतरीन साफ्टवेयर इंजीनियर हैं। पर एक बात समझ नहीं आई कि वे अवांछित हैं कौन।'

अब दोनों सदस्यों को पहले सदस्य की सोच समझ आ रही थी। तीनों मंद मंद मुस्करा दिए। पहले सदस्य ने ही कहना शुरू किया,

'अवांछित' ?

सभी हंस दिए।

मशीन मालिक अभी भी खामोश था और विस्फारित आंखों से उन तीनों को देख रहा था।

'अरे, अरे इतना मत सोचो। आपकी कम्पनी रातों-रात देश की सबसे बड़ी कम्पनी बन जाएगी। अरबों-खरबों की मशीनें बिकेंगी। मान लो, आपके मजदूर किसी बात को लेकर हड़ताल कर दें तो पिटोगे न। अब तो वो लाल-लाल झण्डों वाले कुछ भी करने पर उतारू हैं। 80 प्रतिशत किसानों की आबादी वाले देश में 76 फीसदी किसान अपनी खेती छोड़ रहे हैं और जगह-जगह मजदूरी कर रहे हैं। ये कभी भी इस सरकार और देश की शक्ल बदल सकते हैं। फिर उनके साथ ये कलमें, पैन वाले, कैमरे और माइक वाले। उनके पीछे विपक्ष के लोलुप नेता लोग। कर्ज में डूबे हलईए। कौन कौन नहीं नारे लगाने आ जाएगा।'

'सर वो तो है। बहुत मुश्किल पैदा कर देते हैं ये लोग।'

'यही तो। यही तो। समझो। जब ये लोग ही नहीं रहेंगे, न बजेगा बांस न बजेगी बांसुरी। कहावत पुरानी है पर सटीक बैठती है।'

'जी...जी...जी।'

'पर सर इनका क्या करेंगे। कैसे करेंगे ?'

'फ्लाई किल्लर भई, उसी में जा मरेंगे सब।'

कमरा ठहाकों से गूंज गया। इस बार मशीन मालिक इतने जोर से हंसा कि तीनों सदस्यों की हंसी उसके ठहाकों में दब गई।

'मान गए सर आपका दिमाग। कम्प्यूटर से कहीं ज्यादा। मानो किसी दूसरी दुनिया से लाया गया हो।'

'वही तो, वही तो। हमारे राजा भी ऐसी दुनिया बनाना चाहते हैं जहां एक वर्ग हो। एक रंग हो। एक सोच हो। एक सरकार हो। एक राजा हो। एक धर्म हो। एक ड्रैस कोड हो। एक ही सोच की एलीट सोसाइटी हो। किसानों, मजदूरों का काम केवल रोबोट करें। इन रोज-रोज के झमेलों से तंग आ गए हैं हम। हम भी खुश और विपक्ष भी। सभी अपने-अपने स्वार्थों के लिए तो लड़ते हैं भाई। शुरूआत समाज सुधार से, फिर समाज जाए भाड़ में, अपना सुधार शुरू। आसानी से नहीं मिले तो खून-खराबा, दंगे फसाद, साजिशें, धर्म के नाम पर मारपीट, जाति के नाम पर वोट। ये सब अब पिछड़ों के मुद्दे रह गए हैं। हम एक सम्पन्न दुनिया बनाना चाहते हैं और वह तभी बनेगी भाई जब इन वंचितों का कुछ होगा।'

मशीन मालिक थोड़ी देर चुप रहा। फिर कहने लगा,

'वह तो ठीक है सर, पर उसकी जद में तो कोई भी आ सकता है।'

'भई हम आपको इतनी राशि एक मशीन के लिए क्यों दे रहे हैं। बोलो एक करोड़, दो करोड़, पांच करोड़, कितनी राशि चाहिए आपको। तकनीक ऐसी होनी चाहिए ताकि ये वांछित ही उस मशीन के शिकार हों। चुन-चुन कर।'

'एक बात है सर। हो जाएगा। हो जाएगा। पर आपको उस राजा का जो कोट है उसे हमें देना होगा।'

'पर किस लिए ?'

'आप नहीं जानते सर, उसमें राजा के उतने ही नाम हैं जो उनके अपने हैं, उनकी सोच के हैं और सम्पन्नता में हैं। अमीर हैं। उद्योगपति हैं। यानी बुर्जुवा वर्ग। समझ रहे हैं न आप। इस देश की आधी आबादी जितने।'

'पर आपको कैसे पता ?'

'क्या सर, इतना भी नहीं जानते ? उसे हमने अपने राजा की विशुद्ध साम्राज्यवादी सोच के दृष्टिगत ही निर्मित किया था।

वह पूरी तरह आधुनिक तकनीक के उच्चस्तरीय कम्प्यूटर से बना है। उसमें राजा के नाम विशेष चिप से गुने गए हैं। और हम उन्हीं चिपों को अपनी सोच के लोगों में वितरित कर देंगे। जिनके पास वह चिप होगी, वे उस मशीन की जद में आ ही नहीं पाएंगे।'

'पर उन्हें अपनी सोच के लोगों में बांटेंगे कैसे ?'

'वह हमारी कम्पनी पर छोड़िए सर। हमारे पास एलियन से ज्यादा दिमाग के इंजीनियर हैं। हम ऐसी तकनीक विकसित करेंगे जैसे एक ही बार एक ई-मेल या संदेश लाखों लोगों को जाता है। उसी तरह हम एक विशेष तकनीक से अपनी सोच के लोगों में वह चिप अति गोपनीयता से फिट कर दें। यानी हमारे कम्प्यूटर यह काम करेंगे। काम भी उनका, चयन भी उनका।

ऐसा कहते ही फिर कमरा ठहाकों से गूंज गया।

बहुत देर बाद जीवन कुमार ने अचम्भित होकर कौवे से पूछा, 'हमारे पास भी तो चिप नहीं है ?'

'अब तुम इस दुनिया के नहीं हो न। आत्मा हो। जो अभी मरी नहीं। सुप्त अवस्था में है। तुम जानते हो, मैं भी आत्मा हूं। कोई भी आत्मा मेरे बिना अधूरी है। यानी उसकी गति नहीं है मेरे सिवा। तुमने शास्त्र तो पढ़े होंगे। और हम तो किसी को दिखते भी नहीं न।'

'वह तो है।'

कौवा आगे बताता चला गया।

'.....और इस तरह लाखों फ्लाई किल्लर मशीनें जगह-जगह लगा दी गई। और आहिस्ता-आहिस्ता बिना चिप के लोग उसमें मक्खियों की तरह गुम होते चले गए। बहुत कम समय में उन वंचितों का खात्मा हो गया। राजा के लिए कोई समस्या नहीं रही। मनचाही योजनाएं बनी। हर तरफ एक सामंती स्वामित्व तथा प्रत्यक्ष उत्पादकों के शोषण की ऐसी सामंती प्रभुओं वाली संरचना होने लगी कि सब कुछ राजा की सोच के मुताबिक होता चला गया। राजा ने अपनी सोच के मुताबिक दुनिया बना ली। कोई विपक्ष नहीं, कोई बोलने वाला नहीं। कोई लिखने वाला नहीं। कोई विरोध करने वाला नहीं। कोई चीखने चिल्लाने वाला नहीं। पर उसके बाद भी....?'

'उसके बाद क्या....?'

जीवन कुमार ने उत्सुकता से पूछा था।

'तीन लोग हैं जो पकड़े नहीं गए हैं। उनके पीछे राजा ने अपनी तमाम फौजें, पुलिस और सुरक्षा एजैंसियां लगा रखी हैं। लेकिन वे नहीं मिल रहे, न ही वे उस मशीन की जद में आते हैं।'

'पर वे कौन लोग हैं। ?'

कौवा उसके कन्धे से उतर कर एक सुन्दर पेड़ पर बैठ गया। उसने पेड़ के नीचे लगी एक बैंच पर जीवन कुमार को बैठने का इशारा किया। यह कोई ऊंची जगह थी जहां से बहुत दूर-दूर तक देखा जा सकता था।

कौवा जीवन कुमार को उन तीनों के बारे में बताने लगा था।

'एक के पास हल है, दूसरे के पास कलम और तीसरे के पास हथोड़ा है। राजा को यह समझ नहीं आ रहा है कि इन तीनों के लिए कौन सी मशीन विकसित की जाए जिसकी जद में वे जहां भी हो तुरन्त आ जाएं।'

कौवा अभी यह बता ही रहा था कि सामने से राजा की फौजें आती दिखी। जीवन कुमार भूल गया कि वे उसे नहीं देख सकते। वह आतंकित हो गया। भागा, जितना भी भाग सकता था और एक अंधेरी खाई में गिर गया। होश आया तो अपने को बदहवास सा चिनार के नीचे बैंच पर बैठे पाया। उसे दायीं तरफ के कन्धे में कुछ खिंचाव सा महसूस हुआ। गर्दन घुमाई तो देखा कि बगल में लटके बैग के भीतर एक गाय मुंह घुसाए कुछ चबा रही है। उसने जैसे ही अपने बैग को छुड़ाया, गाय के मुंह में वही पुराने नोटों की गड्डी थी जो अब आधी-अधूरी झाक के बीच दिख रही थी। वह बौखलाया सा जैसे ही उसके मुंह से उन नोटों को छुड़ाने उठा सामने वही विशेष पट्टे वाले लोग खड़े थे।

'क्यों अंकल! आज दूसरा धन्धा शुरू। गाय को बेचने ले जा रहे हो.....?'

बोलने वाला वही व्यक्ति था, जिसने उस मासूम लड़की के चक्कर में उसका कालर पकड़ लिया था।

यह सुनकर उसका मुंह खुले का खुला रह गया। तभी अचानक उसको याद आई कि वह जिस दुनिया से लौटकर आया है वहां का राजा अभी तक भी उन तीन लोगों को पकड़ने में असमर्थ है। उन परिदृश्यों को याद करते हुए सिर उठा कर उसने चिनार के पेड़ की तरफ देखा जिस पर चैत्र-बैशाख अपने शाही अंदाज से बैठ रहे थे। .....और इसी के साथ वहां से निकलते हुए इतनी जोर से ठहाका लगाया कि पास के पेड़ पर बैठे पक्षी भी उड़ गए।

वे विशेष पट्टे वाले लोग किंकर्तव्यविमूढ़ से दूर तक जीवन कुमार को जाते देखते रहे।

संपर्कः ओम भवन, मोरले बैंक इस्टेट, निगम विहार, शिमला-171002 मो. - 98165 66611

कनाड़ाः शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की मिसाल

□ सुरेन्दर पाल सिंह

(हर समाज-देश की एक विशिष्ट संस्कृति है। मानव के विकास क्रम में आबादियां एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसती रही हैं। जिससे मनुष्य एक दूसरे समुदाय से सीखकर अपनी संकीर्णताओं-पूर्वाग्रहों से मुक्त होता रहा है। भारत तो इसका अनूठा उदाहरण है ही दुनिया की कोई जगह ऐसी नहीं है जहां ये प्रक्रिया ना चली हो।

देस हरियाणा पत्रिका के सलाहकार सामाजिक कार्यकर्ता सुरेंद्र पाल सिंह बैंक में अधिकारी रहे। स्वैच्छिक सेवानिवृति के बाद विभिन्न संगठनों और मंचों के माध्यम से सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय हैं। अपना पूरा समय सामाजिक कार्यों व लेखन में निवेश कर रहे हैं और घुमक्कड़ी उनका शौक है। प्रस्तुत है उनकी कनाड़ा यात्रा का अनुभव - सं.)

ब्राम्पटन से एक मित्र की कार से करीब 700 किलोमीटर शीतलहर में सूखे हुए मेपल के वृक्षों व सड़क किनारे बर्फ़ के बिना पिघले हुए लौंदों के बीच यात्रा करते हुए सेंट मेंरी रिवर के किनारे बसे एक शान्त लेकिन ऐतिहासिक शहर में एक लंबा पड़ाव आज 20 मई को पूरा होने जा रहा है।

इस 21 दिनों के अन्तराल में बहुत कुछ नया जानने और समझने को मिला। तीन विशेष बातों ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया। विभिन्न राष्ट्रीयताओं और धर्मों के व्यक्तियों का शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, मूलनिवासियों के लिए विशेष रिज़र्व और अन्य प्रावधान व एक बड़ी संख्या के बाशिन्दों द्वारा बिना किसी धार्मिक पहचान के सामाजिक जीवनयापन।

सन 1871 में 879 की जनसंख्या वाला ये कस्बा सन 1981 में आजतक की अधिकतम जनसंख्या 82,697 को दर्ज कर पाया। सन 2016 की जनगणना के अनुसार यहाँ की जनसंख्या 73,368 है जोकि 2011 की गणना से 2.4% गिरावट पर है।

यहाँ दक्षिणी एशियन, चीनी, अफ्रीकी, फिलीपीन्स, लेटिन अमेरिकन, अरब, दक्षिणी- पूर्वी एशियन, कोरियाई, जापानी, इतालवी, फ्रेंच, स्वीडिश आदि मूल की राष्ट्रीयताओं से जुड़े नागरिक रहते हैं। धार्मिक पहचान के नाम पर क्रिस्चियन में 9 तरह के समुदाय हैं जिनमें से मुख्यतः कैथोलिक क्रिस्चियन 40.64% हैं। यहूदी, हिन्दू, मुस्लिम, बुद्धिस्ट, पारंपरिक और अन्य पहचानों के अलावा बिना किसी धार्मिक पहचान वाले नागरिकों का 24.56% है।

ये इलाका परंपरागत रूप से योजिब्वे नाम के मूलनिवासियों का था जो अनिशिनाबे नाम की भाषा बोलते थे। वे इस इलाक़े को बाइटिगोंग कहते थे क्योंकि यहाँ नदी के एक हिस्से में पानी का ज़बरदस्त ज्वार सा उठता है। सन 1623 में एक फ्रेंच मिशनरी ने इस जगह का नाम फ्रांस के सम्राट लुइस xiii के भाई के नाम से सॉल्ट दे गेस्तों रख दिया था लेकिन सन 1668 में फिर से इसका नाम बदल कर सॉल्ट सेंट मेंरी रखा गया। यहाँ भी सॉल्ट शब्द जिसका अर्थ पानी में तेज उफ़ान है कायम रहा। लेकिन, आम भाषा में इसे सू के नाम से उच्चारित किया जाता है।

उत्तरी अमेरिका का यह इलाक़ा सबसे पहले की फ्रेंच बसासत में से एक है। अब ये स्थान मोंट्रियल से सू और लेक सुपीरियर से ऊपर के उत्तरी क्षेत्र में फैले हुए 3000 मील वाले फर्र व्यापार का महत्वपूर्ण केंद्र बन गया। इस प्रकार धीरे धीरे ये क्षेत्र यूरोपीय व्यापारियों से भर गया जो स्थानीय मूलनिवासियों की सहायता से फर्र को जुटाने और उसके व्यापार में व्यस्त हो गए। इन तमाम यूरोपीय लोगों में दबदबा फ्रांस का ही था। सर्दियों में नदी का उपयोग पानी के ठोस बर्फ़ के रूप में जम जाने की वजह से सड़क की तरह किया जाता था। इस दौरान योजिब्वे और इरॉकोइस मूलनिवासियों की आपसी लड़ाई इस हद तक बढ़ गई कि 1689 तक फ्रांस वाले सॉल्ट सेंट मेंरी मिशन से उदासीन से हो गए थे लेकिन 1701 में मॉन्ट्रियाल में ग्रेट पीस समझौते पर फ्रांस और उत्तरी अमेरिका के 40 फर्स्ट नेशन (मूल निवासियों को यहाँ फर्स्ट नेशन के नाम से जाना जाता है) पर समझौता होने के बाद लम्बे समय से चलने वाले कलह से फ्रांस को राहत की साँस मिली। इसके बावजूद व्यापारिक हितों के चलते अब ब्रिटेन और फ्रांस की आपसी तनातनी ने एक बड़ी और लम्बी लड़ाई का रूप ले लिया। सन 1754 में शुरू हुए इस युद्ध को सेवन इयर्स वॉर के नाम से जाना जाता है। अंततः 1763 में पेरिस सन्धि के अनुसार उत्तरी अमेरिका के क्षेत्र अब फ्रांस के हाथ से निकलकर ब्रिटेन और स्पेन के हवाले हो गए। और इस प्रकार से अब सू का इलाक़ा ब्रिटेन के आधिपत्य में आ गया।

1783 में अमेरिकन क्रांति के बाद ब्रिटेन और अमेरिका के बीच एक नई पेरिस सन्धि हुई जिसके अनुसार सेंट मैरी नदी को दो देशों के बीच का बॉर्डर मान लिया गया। इस प्रकार एक सू के

दो हिस्से हो गए- कनाडा का सू और अमेरिका का सू । इसी दिशा में फिर लन्दन में 1794 में हुई जे सन्धि के अनुसार इस क्षेत्र के मूल निवासियों (फर्स्ट नेशन) को दोनों देशों में आने जाने और बसने का समान अधिकार मिल गया।

कालान्तर में सन 1871 में यहाँ की बसासत को आधिकारिक स्तर पर एक गाँव का दर्जा मिल गया था। सन 1875 में यहाँ पहले स्कूल की स्थापना हुई जो आज अल्गोमा विश्वविद्यालय के रूप में विद्यमान है। धीरे धीरे यहाँ बिजली, टेलीफ़ोन, होटल, बाज़ार, उद्योग आदि का प्रसार होना शुरु हो गया। सन 1895 में सू की एक विशेष और आश्चर्यजनक उपलब्धि यहाँ ऊंचे और नीचे जल स्तर के बीच जहाजों के आवागमन के लिए लॉक व्यवस्था की स्थापना है। इस लॉक के माध्यम से लेक सुपीरियर और सेंट मैरी नदी के पास निम्न जलस्तर वाली ग्रेट लेक के बीच जहाज गुजारे जाते हैं। उल्लेखनीय है कि दोनों तरफ़ के जलस्तर में 21 फुट का फ़र्क़ है। उद्योग के नाम पर मुख्यतः यहाँ एक पेपर मिल और दो स्टील इंडस्ट्रीज हैं जिनमें एक स्टील इंडस्ट्री तो एस्सार की है।

कनाडा में भी लखनऊ है, लन्दन है, कैम्ब्रिज है, वाटरलू है और बर्लिन भी था। वाटरलू, किचनर और कैम्ब्रिज आसपास है इन्हें ट्राइसिटी के नाम से जाना जाता है।

वाटरलू: सन 1783 में अमेरिकन क्रांति के दौरान एक अजीबोगरीब बात हुई । योजिब्वे फर्स्ट नेशन (मूल निवासी) ने अमेरिका का साथ दिया और इरॉकोइस फर्स्ट नेशन ने 5 अन्य फर्स्ट नेशन के साथ गठजोड़ बना कर उपनिवेशवादी ब्रिटेन को सहयोग दिया। ब्रिटेन को बेशक अमेरिका से हाथ धोना पड़ा लेकिन ब्रिटेन ने वॉटरलू के इलाक़े में सन 1784 में इरॉकोइस फर्स्ट नेशन को 6।75 लाख एकड़ ज़मीन इनामस्वरूप दे दी। खैर, सन 1796-98 में कर्नल रिचर्ड बैसले ने इरॉकोइस से 93 हजार एकड़ ज़मीन खरीद ली। सन 1804 में पेनसिल्वेनिया से आए जर्मनभाषी मेंनोनिटीएस {प्रोटेस्टेंट क्रिश्चियन का एक समुदाय जो मेंनो साइमन (1496-1561) के नाम पर नीदरलैंड में पनपा और उन्हें वहाँ से भागने को मजबूर होना पड़ा} ने कर्नल बैसले से ज़मीन खरीद कर वहाँ बस गए।

सन 1815 में बेल्जियम में नेपोलियन को ब्रिटेन, डच, पर्सिया,जर्मनी आदि की सँयुक्त फौज ने वॉटरलू (तत्कालीन नीदरलैंड में) के मैदान में हराया था। इस जीत की खुशी में कनाडा के इस इलाक़े का नाम भी वॉटरलू रखा गया। वैसे वॉटरलू का अर्थ पानी के साथ की ज़मीन है।

किचनर: वॉटरलू और बगल के इलाक़े में धीरे धीरे जर्मनी से आए लोगों की संख्या इतनी अधिक हो गई (50 हजार के करीब) कि सन 1833 में बगल के इलाक़े का नाम बर्लिन रखा गया। लेकिन पहले विश्वयुद्ध में जर्मनी और जर्मन लोगों के ख़िलाफ़ एक विशेष प्रकार रोष यहाँ भी दिखाई दिया। इसी संवेदना के तहत आखिरकार, सन 1916 में पहले विश्वयुद्ध में शहीद हुए ब्रिटिश फील्ड मार्शल हर्बर्ट किचनर के नाम से बर्लिन का नाम किचनर रखा गया।

किचनर - वॉटरलू अक्टूबर फेस्ट: कनाडा का सबसे बड़ा फेस्टिवल अक्टूबर फेस्ट जर्मन मूल के लोगों द्वारा अक्टूबर महीने में मनाया जाता है। हर वर्ष औसतन 6 से 7 लाख लोग इस फेस्टिवल में हिस्सा लेते हैं।

नारीवाद के इतिहास में एक मील पत्थर

कनाडा के ओंटारियो प्रोविन्स के अल्गोमा जिले का शान्त सा ऐतिहासिक शहर सॉल्ट सेंट मैरी(सू)। सेंट मैरी नदी के किनारे बसा है। नदी के ऊपर बना हुआ पुल इसे अमेरिका से जोड़ता है। संसार के नारीवादी आंदोलन से जुड़ा एक महत्वपूर्ण अध्याय इस इलाक़े से सम्बद्ध है।

श्रीमती एंजलीना नपोलितानो (1882-1932) इटली से न्यूयॉर्क होते हुए अपने परिवार के साथ सन 1909 में सू में आकर बस गई थी। उसका पति पित्रो उस पर बार बार शरीर बेच कर पैसा कमाने का दबाव डालता था जिसके लिए एंजलीना के राजी ना होने पर पित्रो ने 1910 में अपने पॉकेट चाकू से उस पर 9 हमले किये। मामला थाना कचहरी गया लेकिन पित्रो की सजा स्थगित कर दी गई।

जब एंजलीना 6 महीने की गर्भवती थी तो 1911 में पित्रो ने फिर उसे जान से मार देने की धमकी दी अगर वो सेक्स से पैसा कमा कर नहीं लाती। आख़िरकार 16 अप्रैल 1911 में परेशान होकर एंजलीना ने एक कुल्हाड़े से पित्रो का क़त्ल करके अपना जुर्म क़बूल कर लिया।

अब अदालती कार्यवाही के साथ साथ कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका और यूरोप के मीडिया में एक तूफ़ान खड़ा हो गया। एंजलीना के पक्ष और विपक्ष में सरगर्मियां बढ़ गई। नारीवादी परिप्रेक्ष्य ने पक्ष की आवाज़ को मुखर किया। ओहियो से एक डॉक्टर एलेग्जेंडर आल्टो ने तो एंजलीना के बदले में अपने लिए फाँसी की सज़ा माँग ली। आख़िरकार 14 जुलाई 1911 को एंजलीना को मौत की सज़ा के बदले उम्र कैद दी गई। 11 वर्षों बाद उसे पैरोल पर छोड़ा गया और 1932 में उसकी मृत्य हो गई।

कालान्तर में 2005 में इस विषय पर बहुचर्चित और लोकप्रिय फ़िल्म बनी - लुकिंग फ़ॉर एंजलीना। ये फ़िल्म मोंट्रियल, जेनेवा, मुम्बई में हुए अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्म फेस्टिवल में दिखाई गई है और अनेकों पुरस्कार जीत चुकी है।

संपर्क—9872890401

हरभगवान चावला की लघु कथाएं

(हरभगवान चावला सिरसा में रहते हैं। हरियाणा सरकार के विभिन्न महाविद्यालयों में कई दशकों तक हिंदी साहित्य का अध्यापन किया। प्राचार्य पद से सेवानिवृत हुए। तीन कविता संग्रह प्रकाशित हुए और एक कहानी संग्रह। हरभगवान चावला की रचनाएं अपने समय के राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ का जीवंत दस्तावेज हैं। सत्ता चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक-सांस्कृतिक उसके चरित्र का उद्घाटन करते हुए पाठक का आलोचनात्मक विवेक जगाकर प्रतिरोध का नैतिक साहस पैदा करना इनकी रचनाओं की खूबी है। इन पन्नों पर हम उनकी कविताएं व कहानियां प्रकाशित कर चुके हैं इस बार प्रस्तुत है उनकी लघु कथाएं - सं.)

इतिहास

राजा ने अपनी भव्य प्रतिमा लगवाई और उस पर खुदवाया- महाप्रतापी, जननायक, दूरदर्शी। इतिहास उधर से गुजरा, प्रतिमा को देखा, हँसा और चिल्लाया- महाकपटी, अहंकारी, हत्यारा। पक्षियों ने इन शब्दों को लपक लिया। पक्षियों ने एक गीत बनाया और अपने बच्चों को गाकर सुनाने लगे। गीत का मुखड़ा था- प्यारे बच्चो, बचकर रहना, यह राजा हत्यारा है। राजा ने यह गीत सुना। उसे बहुत गुस्सा आया। कुछ पक्षी मार डाले गए पर गीत था कि गूंजता ही रहा। राजा इस सब के पीछे बूढ़े इतिहास के शब्दों को ही जिम्मेदार मानता था। राजा इतना शक्तिशाली था कि बड़े-बड़े विद्वानों, कवियों , कलाकारों, चिंतकों, धनवानों को अपने चरणों पर झुका चुका था... पर यह बूढ़ा इतिहास अब तक क़ाबू में नहीं आया था। उसने इतिहास- ग्रंथों की स्याही बदलवा दी, लिपि बदलवा दी, तिथियाँ तक बदलवा दीं, फिर भी इतिहास की हँसी बरबस उसके कानों में घुस जाती। उसे बार-बार सुनाई पड़ता- महाकपटी, अहंकारी, हत्यारा। ऊपर से महल की छत पर आकर गाते पक्षियों का गीत उसे असहज कर देता। एक दिन राजा के सब्र का बाँध टूटा। उसके भीतर का हत्यारा बेकाबू हो गया। लोगों ने देखा- राजा की प्रतिमा के ठीक पीछे बूढ़ा इतिहास कीचड़ में औंधे मुंह पड़ा था। अब राजा निश्चिंत था। कुछ दिन बाद लोगों ने एक और नज़ारा देखा- राजा की प्रतिमा कीचड़ में पड़ी थी। इतिहास की आवाज गूँज रही थी- महा कपटी, अहंकारी , हत्यारा। थोड़ी देर बाद पक्षियों का झुंड गाने लगा- प्यारी जनता बच कर रहना, यह राजा हत्यारा है।

क़ानून

" यह क़ानून क्या होता है गुरुदेव?"

" सबसे ताकतवर राजनीतिक दल के मुखिया की मंशा को क़ानून कहते हैं वत्स!"

" और नैतिकता गुरुदेव!"

" तुमने डायनासोर का नाम सुना है?"

" जी गुरुदेव वह एक खतरनाक प्राणी था। अब यह प्रजाति लुप्त हो चुकी है।"

" डायनासोर की तरह नैतिकता भी आदिम युग से चली आ रही एक ख़तरनाक बीमारी है, जिसका विषाणु कभी पूरी तरह समाप्त नहीं होता। इस विषाणु को मारने के प्रयास भी आदिम युग से ही किए जा रहे हैं, पर युद्ध स्तर पर इससे निपटने की कोशिश पिछली सदी से ही आरंभ हुई। अब काफ़ी हद तक इस पर काबू पाया जा चुका है। जल्द ही देश को नैतिकता मुक्त घोषित कर दिया जाएगा।"

" ठीक वैसे ही न गुरुदेव जैसे चेचक मुक्त, प्लेग मुक्त, पोलियो मुक्त, खुले में शौच मुक्त आदि?"

" हाँ, ठीक उसी तरह। जिस व्यक्ति को नैतिकता की बीमारी होगी, उसे क़ानून सख्त सज़ा देगा।"

" ईश्वर आपकी रक्षा करें। मुझे आप में इस बीमारी के जीवाणु दिखाई देते हैं। बचकर रहिएगा गुरुदेव, आजकल क़ानून पूरी सख्ती से लागू किए जा रहे हैं।"

भेड़िया

प्रशिक्षण शिविर में कुत्तों को बताया गया कि हिंसा परम धर्म है, कि तुम जैसा वफादार प्राणी इस संसार में नहीं है, कि तुम इस संसार के गौरव हो, कि तुम्हारे पूर्वजों के कारण ही यह सृष्टि हमेशा सलामत रही, कि अब तुम्हारी नस्ल खतरे में है क्योंकि भेड़िए तुम्हारा सर्वनाश करने पर आमादा हैं, कि अपना अस्तित्व बचाने के लिए तुम्हें भेड़ियों का वध करना होगा। कुत्तों में गर्व का संचार हुआ। उन्हें लगने लगा कि उनसे ज्यादा ताकतवर और कोई प्राणी नहीं है। वे आश्वस्त थे कि भेड़िए तो क्या, शेर भी उनके सामने टिक नहीं पाएंगे। प्रशिक्षक का संकेत पाते ही प्रशिक्षित हिंस्र कुत्तों का झुंड किसी जंगल पर टूट पड़ता। एक के बाद एक जंगल भेड़ियों से विहीन होते चले गए। कुत्ते भेड़ियों को खाते नहीं थे, सिर्फ नोचते थे। एक दिन एक जंगल का सफाया करने के बाद जब झुंड सुस्ता रहा था तो एक कुत्ते ने गौर किया कि उन के झुंड का वह काला कुत्ता गायब है जिसमें पिछले कुछ दिनों से शिकार के प्रति उत्साह निरंतर कम हो रहा था। क्या उसे भेड़ियों ने मार डाला है? कुत्तों को समझ में नहीं आया, पर वे काफी समय तक उदास बने रहे। तीन-चार दिनों के बाद कुत्तों ने झुंड में से एक और कुत्ते को गायब पाया। फिर तो यह

सिलसिला शुरू हो गया। कुछ कुछ दिनों के बाद कोई ना कोई कुत्ता गायब हो जाता। कुत्तों ने तय किया कि वे उनके झुंड के सदस्यों को मारने वाले भेड़िए का पता लगा कर रहेंगे। कुत्तों का दल बारी बारी से उन सभी जंगलों में गया जहां उन्होंने भेड़ियों का खात्मा कर दिया था। किसी जंगल में उन्हें अपने साथियों के शव तो नहीं ही मिले, किसी भेड़िए का शव भी नहीं मिला। जहाँ-जहाँ उन्होंने भेड़ियों को मारा था, वहां खरगोशों, नीलगायों, हिरणों, बंदरों, गीदड़ों आदि के शव पड़े थे। ओह तो उन्होंने भेड़ियों के भ्रम में अब तक इन मासूम प्राणियों को ही मारा था। हिंसा के मद में डूबे वे सभी जानवरों को भेड़िया ही समझते रहे। कुत्ते जंगल से बाहर आए और अपने साथियों के गायब होने की शिकायत करने के लिए प्रशिक्षक के महल में घुस गए। वे पहली बार महल में घुसे थे। वे यह देख कर हैरान रह गए कि उनके साथी कुत्तों की खालें दीवारों पर लटक रही थीं ।प्रशिक्षक चिल्लाया- बिना इजाज़त तुम महल में घुसे कैसे? कुत्तों ने कुछ नहीं सुना। उनकी प्रश्नाकुल आँखें प्रशिक्षक की ओर मुड़ गईं। उन्होंने देखा उनके सामने खूँखार भेड़िया खड़ा था।

मोहल्ला द्रोह

मोहल्ले में चारों तरफ गंदगी बिखरी थी। एक युवक चिल्लाया," सुनो मेरे मोहल्ले के लोगो! हमारे मोहल्ले में फैली गंदगी के कारण हम सब का जीना मुश्किल हो गया है। आओ हम सब मिलकर मोहल्ले को गंदगी से मुक्त कर दें।" कुछ लोग घरों से बाहर निकले उनके हाथों में लाठियाँ थीं, आँखों में नफ़रत, होठों पर गालियाँ। युवक को किसी ख़तरे की आशंका हुई। इससे पहले कि वह भाग पाता, भीड़ ने उस पर हमला कर दिया। होश में आने पर उसने पाया कि वह एक चारपाई पर लेटा है, उसके शरीर पर पट्टियां बंधी हैं। उसके आसपास वही लोग जमा हैं, जिन्होंने उस पर हमला किया था। अलबत्ता इस बार उनके हाथों में हथियार नहीं थे। हाँ, आँखों में नफ़रत ज्यों की त्यों छलकी पड़ रही थी।

"हां तो समाज सुधारक महोदय, कैसे मिज़ाज हैं आपके?" उनमें से एक ने पूछा।

"मिज़ाज तो अच्छे हैं, पर मुझे यह समझ में नहीं आया कि मुझ पर हमला क्यों किया गया?"

" तुमने हमारे मोहल्ले पर उंगली उठाई है इसलिए।"

" वह मोहल्ला मेरा भी तो है, क्या गंदगी साफ करने के लिए कहना उंगली उठाना है?"

" क्या सिर्फ हमारा ही मोहल्ला गंदा है, दूसरा मोहल्ला तुम्हें क्यों नहीं दिखता?"

" दूसरे मोहल्ले में अगर गंदगी है तो वहां के लोग आवाज़ उठाएँ, हमें पहले अपने मोहल्ले को देखना चाहिए।"

" इसी को मोहल्ला द्रोह कहते हैं और इसी द्रोह की सज़ा तुम्हें मिली है। तुम्हें गंदगी दिखी, मोहल्ले की अच्छाइयाँ नहीं दिखीं। तुम्हें क्या मालूम नहीं कि हमारे मोहल्ले में लोग पशुओं तक से प्यार करते हैं (और इंसानों से नफ़रत- उसने सोचा), भंडारे चलाते हैं, भक्तों पर पुष्प वर्षा करते हैं।"

" यह सब तो ठीक है, पर गंदगी और बदबू और पाखंड... ओफ्फ़... मेरा दम घुटता है, आपका नहीं घुटता?"

" हमारा तो नहीं घुटता। बड़ा आया दम घुटने वाला! यह मोहल्ला तुम्हें गंदा लगता है तो दूसरे मोहल्ले में चले जाओ।"

" पर वह मोहल्ला भी तो इतना ही गंदा है। बेहतर हो कि हम मोहल्लों को इंसानों के रहने लायक बनाएँ, गंदगी से गंदगी की तुलना क्यों करें?"

" ज़्यादा उपदेश देने की ज़रूरत नहीं है। यहाँ रहना है तो यहां की परंपराओं का सम्मान करना सीखो। फिर कभी मोहल्ले के बारे में कुछ कहा तो घुटने के लिए दम बचेगा ही नहीं।"

लोग चले गये थे ।उसने सोचा, क्यों न उन लोगों की तरह गर्व ही किया जाए । उसने कल्पना की कि वह एक भक्त है । दूर दराज के तीर्थ स्थल से लौटा है । लोग उसकी जय-जयकार कर रहे हैं । उसपर हेलिकॉप्टर से फूल बरसाए जा रहे हैं । उसने उन फूलों की सुगंध अपने भीतर भर लेने के लिए एक लंबी साँस ली और उसे बहुत ज़ोर की उबकाई आ गई ।

सज़ा

अपने पालतू सफेद कबूतर का पीछा करते हुए राजकुमार कब छोटी रानी के महल में दाख़िल हो गया, उसे पता ही नहीं चला। रानी के महल में राजा के अलावा किसी परिंदे को भी घुसने की इजाज़त नहीं थी और यहां तो परिंदा ही नहीं, परिंदे का मालिक राजकुमार भी महल में घुस आया था। राजकुमार दोषी था तो तय था कि उसे सज़ा मिलेगी; लेकिन एक तो वह राजकुमार था, आम आदमी नहीं, फिर वह नाबालिग भी था। सो तय किया गया कि राजकुमार को प्रतीकात्मक सज़ा दी जाएगी। हूबहू राजकुमार जैसा रुई का एक पुतला बनाया गया और उस पुतले को बीस कोड़ों की सज़ा सुनाई गई। दरबार में मौजूद बीस सिपाहियों को एक एक कोड़ा मारने की ज़िम्मेदारी दी गई। कोड़े मारने का सिलसिला आरंभ हुआ। एक सिपाही जाता, कोड़ा मारता, फिर दूसरा जाता, कोड़ा मारता। इस तरह उन्नीस कोड़ों की सज़ा संपन्न हो गई। दरबार में मौजूद राजकुमार ख़ामोशी से इस तमाशे को देखता रहा। अब बीसवाँ कोड़ा बचा था और एक सिपाही। सिपाही ने पुतले को कोड़ा मारा।

पर यह क्या? पुतले पर कोड़ा पड़ते ही राजकुमार की चीख निकल गई और वह दर्द से दोहरा होकर छटपटाने लगा। सारे दरबारी हैरान हो कर देख रहे थे। राजकुमार की पीठ पर एक धारी उभर आई थी,जिसमें से लहू रिस रहा था। वज़ीर कुछ देर तक ध्यान से देखता रहा। उसे सारा माजरा समझ में आ गया। उसने सिपाही को बुलाया और गरज कर पूछा," सजा के तौर पर पुतले को कोड़ा मारना तुम्हारा कर्तव्य था, पर तुम्हारे मन में गहरा द्वेष भरा था, इसीलिए कोड़ा सीधे राजकुमार की पीठ पर पड़ा और उनकी पीठ पर इतना गहरा घाव हो गया। बताओ राजकुमार से तुम्हारी क्या व्यक्तिगत शत्रुता है? जल्दी बोलो, वरना सर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।" सिपाही ने इधर-उधर देखा। सारे सिपाही सर झुकाए खड़े थे। उसने वज़ीर की आँखों में आँखें डाल कर कहा, "मेरी राजकुमार से कोई शत्रुता नहीं है। इतना अवश्य है कि सज़ा क्योंकि राजकुमार के लिए थी तो मैं अपनी कल्पना में चाह कर भी राजकुमार की जगह पुतले को नहीं बिठा सका। दूसरी बात यह कि हमारी राजधानी में पढ़े-लिखे युवाओं को बैल की जगह कोल्हू में जोता जाता है। कोल्हू को खींचते हुए जब कोई युवा बेदम हो कर सांस लेने को पल भर के लिए रुक जाता है तो उस पर कोड़े बरसाए जाते हैं। कोल्हू में जुतने वाले युवाओं में एक मेरा भी बेटा है। वह रोज़ शाम को जब घर आता है तो उसकी पीठ पर मैं धारियां देखता हूँ, जिनमें से लहू रिस रहा होता है। आज जब मैंने कोड़ा मारा तो ठीक उसी समय बरबस मुझे अपने बेटे की पीठ याद आ गई।"

न्याय

"उठो।" किसी ने मुझे झिंझोड़ते हुए कहा। मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा। देखा, सामने एक नारी प्रतिमा थी। दिव्य रूप, श्वेत वसन, आँखों पर काली पट्टी, हाथ में तराज़ू। अरे, यह तो न्याय की देवी है। मैं हैरान था कि आज इतनी सुबह न्याय की देवी मेरे पास क्यों आई है। मेरी आंखों में उग आये प्रश्न को जैसे समझते हुए उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें न्याय देने आई हूं। उठो, नहा धोकर मेरे साथ चलो।"

"पर मैंने तो कभी न्याय की गुहार नहीं लगाई। न ही किसी की शिकायत की। मैं तो एक मामूली सा लेखक हूँ और वही लिखता हूँ जो देखता हूँ।

"फिर कहते हो कि मैंने किसी की शिकायत नहीं की। कितनी तो शिकायतें हैं तुम्हें शासन से, प्रशासन से, व्यवस्था से। मेरे साथ दरबार में चलो। आज तुम्हारी सभी शिकायतों का समाधान किया जाएगा।

" मैं दरबार में नहीं जाऊँगा। लेखक दरबार का शरणागत कैसे हो सकता है?"

" तुम दरबार में नहीं जाओगे दरबार के दरबारी बाहर उद्यान में प्रजा के सामने तुमसे मिलेंगे और तुम्हें न्याय देंगे। अब चलो देर मत करो।"

थोड़ी देर बाद मैं न्याय की देवी के पीछे-पीछे पीछे चला जा रहा था। देवी की आँखों पर पट्टी बँधी थी, पर उनकी चाल बेहद सधी हुई थी। गंतव्य पर पहुंच कर मैंने पाया कि एक मंच पर कुछ लोग विराजमान थे और मंच के सामने लोगों की भीड़ थी। उस भीड़ में एक भी महिला नहीं थी। किंकियाने जैसे लहजे में चीखती निपट पुरुषों की भीड़ मुझे डरावनी सी लगी। हम दोनों मंच पर चढ़कर खड़े हो गए।

" आओ देवी तुम्हारा बहुत बहुत धन्यवाद।" यह कहकर एक बहुत स्वस्थ दरबारी ने देवी का हाथ पकड़कर झटक दिया। देवी चक्कर खाती हुई मंच पर गिर गई। पाँच-छह दरबारी उसकी बाँहों और टाँगों पर खड़े हो गए। मैंने देखा, दरबारियों के जूतों में बेहद नुकीली कीलें थीं और देवी की देह से रक्त की धारा बहने लगी थी। देवी के हाथ की तराज़ू एक तरफ टूटी पड़ी थी। मेरी देह पसीने में नहा गई थी और मैं काँप रहा था। मैं मंच से छलाँग लगाकर भाग खड़ा हुआ; पर उसी क्षण भीड़ ने मुझे लपक लिया। मैं किसी गेंद की तरह हाथ- दर-हाथ लुढ़कता हुआ वापस मंच पर ढकेल दिया गया था। न्याय की देवी मंच पर तड़प रही थी और अब दरबारी मेरी ओर बढ़ रहे थे। मैं बहुत डरा हुआ था, फिर भी लगभग चिल्लाते हुए भीड़ से मुख़ातिब हुआ, "सुनो, मुझे सुनो, मैंने सदा तुम्हारे दुखों को वाणी दी है..." भीड़ अट्टहास कर रही थी, हवा भीड़ की अश्लील किलकारियों से गूंज उठी थी। उसका हिंसक उत्साह देखते ही बनता था। दरबारी अब मेरे बहुत क़रीब आ पहुंचे हैं और यह वह वक्त है, जब सूर्योदय से ठीक पहले की लालिमा आसमान में फैल गई है।

संपर्क - 9354545440

कला सच्चाई को देखने की शक्ति के अनुपात में ही विकसित हो सकती है। उसकी इस क्षमता पर ही कला का विकास या विनाश निर्भर करता है।

- हावर्ड फास्ट

गढ़ घासेड़ा

□ सिद्दीक अहमद मेव

(सिद्दीक अहमद मेव पेशे से इंजीनियर हैं, हरियाणा सरकार में कार्यरत हैं। मेवाती समाज, साहित्य, संस्कृति के इतिहासकार हैं। इनकी मेवात पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मेवाती लोक साहित्य और संस्कृति के अनछुए पहलुओं पर शोधपरक लेखन में निरंतर सक्रिय हैं—सं.)

दिल्ली से लगभग 65 किलोमीटर दक्षिण में दिल्ली - अलवर सड़क के किनारे बसा हुआ है,मेवात का सबसे पुराने व सबसे बडे गांवों में एक ऐतिहासिक गांवघासेड़ा। यह गांव मेवों की प्रतिष्ठित पाल, देंहगलां पाल के घासेड़िया थाबा का पाबा है जहां घासेड़िया देंहगल के 210 गांवों की चौधर भी है। लगभग 4 कि.मी. की परिधि में बसा गढ़ घासेड़ा मेवात सब प्राचीन गांवों में से एक है। हालांकि यह गांव मेव बाहुल्य है। मगर इस गांवमें मेवों के साथ ही बनिये, अहीर, ब्राह्मण, हरिजन, वाल्मीकि, नाई, मीरासी, सक्का, फकीर, गडरिया, कसाई, कुम्हार आदि जातियां आपसी सदभाव प्रेम ,भाईचारा एवं मेल - मिलाप के साथ रहती हैं। गांवके पूर्व में एक जोहड़ ऐसा भी है ,जिसके पश्चिमी किनारे पर मस्जिद और पूर्वी किनारे पर मन्दिर बना हुआ है। दोनों समुदाय (हिंदू और मुसलमान) अपनी-अपनी आस्था के अनुसार अपने-अपने धर्मस्थल में पूजा एवं इबादत करते हैं। कहीं कोई ईर्ष्या या द्वेष नहीं ,कहीं कोई वैमनस्य नहीं ।

गाँव में कई प्राचीन कुँएं, ऐतिहासिक मकबरे, चौपाल, मन्दिर व मस्जिद तथा राव हाथी सिंह बड़गूजर के 'गढ़ घासेड़ा ' के खण्डहर इस बात के प्रमाण हैं कि ' इमारत कभी बुलन्द थी। ' तबलीग आन्दोलन के बानियों में से एक मिंयाजी मूसा के इस गाँव ने हमेशा ही मेवात की राजनीति को प्रभावित किया। गाँव में इस वक्त राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय राजकीय और कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के साथ-साथ एक प्रतिष्ठित इस्लामी मदरसा भी चल रहा है। गांव के कुछ जागरूक एवं उत्साही नौजवानों ने 'फलाह -ए- मेवात यूथ क्लब' बनाकर गांव में सामाजिक, सांस्कृतिक व शैक्षिक जागृति लाने का सराहनीय काम शुरू कर रखा है। इन लोगों ने 'चौ. रणबीर सिंह हुड्डा' पब्लिक लाईब्रेरी स्थापित कर एक ऐसा कीर्तिमान बनाया है ,जिसे लोग वर्षों याद रखेंगे।

घासेड़ा मेवात का प्राचीन ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक गांव भी है। प्रागैतिहास के कोई प्रमाण अभी तक इस गांव में नहीं मिले हैं , मगर वैदिक एवं महाभारत कालीन प्रमाण,समय-समय पर इस गांव की मिट्टी के गर्भ से प्राप्त होते रहे हैं। मुगल काल में तो इस इस गांव को विशेष दर्जा प्राप्त था। औरंगजेब ने घासेड़ा तथा आस-पास के बारह गांवों, (जिनमें नूंह व मालब भी शामिल थे) की जागीर हाथी सिंह नामक एक बड़गूजर राजपूत को अता कर घासेड़ा को 'गढ़ घासेड़ा' बना दिया।

यद्यपि मेवात में औरंगजेब के इस फैसले के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई और घासेड़ा के मेवों ने सहसौला में जाकर शरण ली, मगर हाथी सिंह तो घासेड़ा का गढ़पति बन ही गया था। घासेड़ा का जागीरदार बनने के पश्चात हाथी सिंह ने इस गाँव को योजनानुसार दोबारा बसाया। उसने गाँव के बीचों बीच अपने महल का निर्माण करवाया जिसके नीचे तहखाने थे। महलों के चारों ओर ईंटों की पक्की दीवार बनवाई। इस दीवार के अन्दर ही उत्तर की ओर एक कुँआं बनवाया, जिसमें बरसात के समय नालियों द्वारा पानी इकट्ठा किया जाता था, जिसे बाद में पीने व दूसरे उपयोग में लिया जाता था।

पास में ही स्थित एक जोहड़ के दक्षिणी किनारे पर एक छोटा सा मन्दिर है, जिसे 'पथवारी' के नाम से जाना जाता है। पक्की दीवार के चारों ओर कच्चा गढ़ था, जिसमें पूर्व व पश्चिम की ओर दो दरवाजे थे। पश्चिमी दरवाजे के दाईं तरफ हाथी सिंह का अस्तबल था तथा पूर्वी दरवाजे के बाहर बाजार था। पक्की चारदीवारी के अन्दर हाथी सिंह का निवास व कचहरी थी, जबकि पक्की दीवार के बाहर एवं गढ़ के अन्दर आम जनता रहती थी।

गाँव अथवा गढ़ की बाहरी सीमा पर चारों कोनों पर बुर्ज बुनवाये गये थे, ताकि आक्रमणकारी शत्रु पर नजर रखी जा सके। गढ़, महल, दरवाजे तथा बुर्जों के खण्डहर आज भी गांव में मौजूद हैं।

हाथी सिंह के बाद उसका बेटा राव बहादुर सिंह, घासेड़ा की गद्दी पर बैठा। वह बड़ा अभिमानी, क्रूर एवं कठोर व्यक्ति था। जनता के प्रति उसका व्यवहार अत्यन्त कठोर एवं रूखा था, जिसके कारण जनता काफी परेशान थी। उसके इसी कठोर एवं निर्दयी व्यवहार को देखकर महाकवि सादल्लाह ने उसके भरे दरबार में ही कह दिया था कि -

सादल्ला सांची कहे,कदी न बोले झूठ !

राजा तेरा महल में ,गादड़ बोलां च्यारू कूंट !!

इस समय राजा सूरजमल के नेतृत्व में जाटों ने शकिल प्राप्त कर भरतपुर रियासत कायम कर ली थी। सूरजमल एक साहसी एंव महत्त्वाकांक्षी सरदार था ,जो रोहतक तक अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था! मगर यह तभी संभव था जब मेवात या तो उसके आधीन हो जाय या उसका सहायक बन जाए। मौके का फायदा उठा कर मेवाती सरदारों ने 'कांटे से कांटा निकालने' का निर्णय लिया और सूरजमल को घासेड़ा पर हमला करने के लिए उकसाया।

सूरजमल ने पूरी शकिल के साथ घासेड़ा पर हमला किया। राव बहादुर ने भी अपने गढ़ से बाहर आकर पश्चिमी किनारे पर मोर्चा लगाया। भीषण युद्ध के पश्चात राव बहादुर गढ़ के अन्दर लौट आया और गढ़ के दरवाजे बन्द कर लिये। जाट सेना ने गढ़ की घेराबन्दी कर ली। तीन महीने तक जाट सेना 'गढ़' का घेरा डाले रही।

तीन महीने की घेराबन्दी से परेशान हो राव बहादुर ने एक भंयकर फैसला लिया। वह नंगी तलवार लेकर महलों में गया और रानियों सहित सम्पूर्ण परिवार को मौत के घाट उतार कर,लाशों को कुँए में डलवा दिया। उसके बाद पूरे जोश के साथ जाट सेना पर टूट पडा। भीषण युद्ध हुआ। घासेड़ा का युद्ध मैदान लाशों से पट गया। मगर वह (बहादुर सिंह) जाट सेना के हाथों मारा गया और मैदान सूरजमल के हाथ रहा। लौटते समय जाट सेना गढ़ घासेड़ा के दरवाजे भी अपने साथ ले गई। ये दरवाजे आज भी डीग के किले में लगे हुए हैं।

इस लड़ाई के बाद काफी दिनों तक घासेड़ा गाँव यूँ ही खण्डहर के रूप में पड़ा रहा। फिर कायम खाँ नामक व्यक्ति ने सहसौला से आकर इसे दोबारा आबाद किया।

सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्रम के समय घासेड़ा मेवाती क्रान्तिकारियों की गतिविधियों का एक बड़ा केन्द्र था। अंग्रेजी सेना से विद्रोह कर मेवाती सैनिकों ने हसन अली खाँ के नेतृत्व में एक सैनिक दल का गठन कर घासेड़ा में मोर्चा लगाया था। अंग्रेज सेनाधिकारियों को जब इसका पता लगा तो उन्होंने लैफ्टीनेन्ट रांगटन के नेतृत्व में कुमाऊं रैजीमेंट का एक दस्ता तथा टोहाना हॉर्सेज की एक टुकडी घासेड़ा की तरफ रवाना की। इस सेना के पास तोप भी थी। टोहाना हार्सेज, जिसमें पचास घुड़सवार थे, का नेतृत्व लै. रांगटन स्वयं कर रहा था। जबकि कुमाऊँ रैजीमेन्ट जिसका नेतृत्व कैप्टन ग्रान्ट कर रहा था, में एक नेटिव आफिसर, दो नॉन कमीशन्ड आफीसर एवं 62 पैदल सैनिक थे। इस सेना ने घासेड़ा से लगभग दो मील उत्तर-पूर्व में स्थित गाँव मेलावास की पहाड़ी के पास डेरा डाला। सेना ने रास्ते में पड़ने वाले ग्राम आटा व रेवासन को आग लगाकर तहस-नहस कर दिया।

अगले दिन दो दिशाओं से इस सेना ने घासेड़ा पर हमला किया। एक दल सीधा तथा दूसरा दल रेवासन की ओर से आगे बढ़ा। पहले सीधे आने वाले सैनिकों ने गाँव पर हमला किया, जिसका क्रान्तिकारियों ने मुंह तोड़ जवाब दिया। घमासान युद्ध छिड़ गया। अचानक रेवासन की ओर से आने वाली सैनिक टुकडी ने गाँव पर गोलाबारी शुरू कर दी। भीषण युद्व छिड़ गया। देखते ही देखते 150 क्रान्तिकारी शहीद हो गये। शेष बचकर निकल गये और मैदान अंग्रेजी सेना के हाथ रहा।

गाँधी जी के नेतृत्व में चले स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी इस गाँव का सराहनीय योगदान रहा। 1938 में इस गाँव में औपचारिक रूप से कांग्रेस कमेटी का गठन हुआ और 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन में लोगों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया।

आखिर 15 अगस्त,1947 को देश आजाद हुआ, मगर भारत व पाकिस्तान के रूप में विभाजित भी हो गया। अलवर तथा भरतपुर के राजाओं ने मेवों को जबरदस्ती पाकिस्तान धकेलने की योजना बनाई। साम्प्रदायिक शक्तियों के उकसाने पर दोनों रियासतों की सेनाओं ने मेवों का कत्ले आम शुरू कर दिया। लोग अपने घर-बार, जमीन-जायदाद छोड़ काफिले बना- बना कर पाकिस्तान जाने लगे। दिल्ली के पुराने किले के अलावा रेवाड़ी, सोहना व घासेड़ा में कैम्प लगाये गये ताकि लोगों को काफिलों में पाकिस्तान भेजा जा सके।

साम्प्रदायिक लोगों के अलावा मुस्लिम लीग के स्वयं-सेवक भी लोगों को उनकी इच्छा के विरूद्ध पाकिस्तान जाने के लिए उकसा रहे थे। मेवों के सर्वमान्य नेता चौ. यासीन खाँ व कं. मुहम्मद अशरफ के विरूद्ध मुकदमा दर्ज करवा दिया गया था। और वे दोनों भूमिगत थे। लोग परेशान थे। कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था। आखिर चौ. मुहम्मद यासीन खाँ, चौ. अब्दुल हुई और दूसरे मेव चौधरियों के प्रयास से 19 दिसम्बर ,1947 को महात्मा गाँधी घासेड़ा गाँव में आए। उन्होंने मंच से लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा, ''मेव हिन्दुस्तान की रीढ़ की हड्डी हैं, उन्हें जबरदस्ती उनके घरों से नहीं निकाला जा सकता।'' तब कहीं जाकर मेवात पुनः आबाद हुआ। हरियाणा सरकार ने 2007 में इस गाँव को फॉकल विलिज (आदर्श गाँव) घोषित किया था। मेवात का यह प्राचीन एवं ऐतिहासिक गाँव अब चँहुमुखी विकास के पथ पर अग्रसर है।

संपर्क: 9813800164

हज़रत अमीर खुसरो से चलकर उर्दू का बढ़ता हुआ कारवां

□ शशिकांत श्रीवास्तव

(अंग्रेजी के विद्वान शशिकांत श्रीवास्तव साहित्य के गंभीर अध्येता हैं। कई दशकों तक कालेज में अध्यापन किया और हरियाणा के सरकारी कालेजों में प्रिंसीपल रहे। हिंदुस्तानी साहित्य की सांझी विरासत को आत्मसात किया है। उर्दू ग़ज़ल के गहरे जानकार हैं। देस हरियाणा के अंक 19 -20 में उर्दू की विभिन्न विधाओं के बारे में उनके विचार प्रकाशित किए थे। हमने घोषणा की थी कि 'देस हरियाणा के आगामी अंकों में आप पढ़ेंगे शशिकांत श्रीवास्तव लिखित उर्दू ग़ज़ल के सफर को'। इस बार प्रस्तुत है हज़रत अमीर खुसरो से चलकर उर्दू का बढ़ता हुअ कारवां - *सं।*)

उर्दू शायरी के प्रारंभिक स्वरूप की चर्चा करते हुए सबसे पहला नाम आता है - हज़रत अमीर खुसरो का, इनका जन्म सन् 1253 में ऐटा (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इनके पिता एक तुर्क थे तथा मां राजपूत, इनका वास्तविक नाम अबुल हसन यमनुद्दीन खुसरो था। यह बचपन से ही बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उच्च कोटि के सूफ़ी (खुदा की शान में लिखने-गाने वाला) शायर, संगीतज्ञ, तथा दार्शनिक थे। कला के हर क्षेत्र में इनका योगदान है। कई शास्त्रीय रागों तथा सितार की शुरुआत हज़रत खुसरो के नाम है।

भाषा के क्षेत्र में हज़रत खुसरो ने तुर्की-फारसी और खड़ी बोली को मिला-जुला कर एक नई भाषा 'हिन्दवी' प्रचलित की। लेखन क्षेत्र में भी 'खुसरो' को कमाल हासिल था। उन्होंने बच्चों के लिए पहेलियां और 'दो-सुखने' लिखे। प्रचलित हिन्दी में दोहे और गीत लिखे जो बहुत ही लोकप्रिय हैं : बानगी देखिए-

दोहे :

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डाले केस
चल 'खुसरो' घर आपने, रैन भई चहुं देस।
'खुसरो' रैन सुहाग की जागी पी के संग
तन मेरो, मन पी को, दोनों भए इक रंग।
'खुसरो' दरिया प्रेम का वाकी उल्टी धार,
जो उतरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार।

पहेली :

लिपट लिपट के वा के सोई,
छाती से छाती लगा कर सोई
दांत से दांत बजे तो ताड़ा
ऐ सखी साजन? ना सखी 'जाड़ा'!
एक गुनी ने यह गुन कीना,
एक पिंजरे में दे दीना,
देखो जादूगर का कमाल,
हरा डाले निकले लाल (पान)
बीसों का सिर काट लिया
ना मारा 'ना खून' किया!

दो सुखने :

अनार क्यों न चखा?
वज़ीर क्यों न रखा?
'दाना' न था - (दाना का एक अर्थ समझदार होता है)

गोश्त क्यों न खाया?
डोम क्यों न गाया? 'गला' ना था।

गीत :

- काहे को ब्याही विदेश री।
- अम्मा, मोरे बाबा को भेजियो री, कि सावन आया।
- जो पिया आवन कह गए, अजहुं ना आए

सूफियाना :

अमीर ख़ुसरो का सूफी कलाम तो अनेक प्रसिद्ध गायकों (आबिदा परवीन, नुसरत फतेहअली, साबरी बंधु आदि) ने अपने -अपने अनूठे अंदाज से गाकर घर-घर तक पहुंचा दिया है।

- छाप तिलक सब छीनी रे, मोसे नैना मिलाय के
- आज रंग है, सखी...
- मन कुंतो मौला

आदि अनेक प्रचलित रचनाओं के शायर हजरत खुसरो ही हैं। इन कालजयी रचनाओं के रचयिता, 'हिन्दवी' के प्रचलनकर्ता, संगीतज्ञ, दार्शनिक तथा 'तूतिए-हिन्द' की उपाधि से विभूषित अमीर खुसरो ने सन् 1325 में समाधि ली।

हज़रत खुसरो के बाद उर्दू शायरी में एक बहुत लंबा अंतराल आ गया। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दक्षिण भारत (हैदराबाद-औरंगाबाद-बीजापुर-गोलकुंडा) में कुछ शायर हुए। उन्होंने भी अधिकतर फारसी में ही लिखा, परन्तु साथ ही साथ उर्दू (जैसी उस समय 'दक्कन' में बोली जाती थी) में भी कुछ ग़ज़लें- शेर कहे, उनमें प्रमुख नाम **मुहम्मद क़ुली क़ुतुब शाह** (1565-1611) का है। इन्होंने अधिकतर फ़ारसी में लिखा। बहुत

थोड़ा ऐसा भी लिखा, जिसमें उस समय के प्रचलित हिन्दी शब्द भी थे जैसे

पियाबाज पिलाया पिया जाए ना
पियाबाज यक तिल जिया जाए ना *(एक क्षण)*
कहते हैं, पिया बिना सबूरी करूं *(धैर्य)*
कहा जाए, अमां, किया जाए ना,
'कुतुबशाह' न दे मुझ दीवाने को पंद (सम्मान)
दीवाने को कुछ पंद दिया जाए ना।

कुतुब कुली शाह के बाद इनके वंश में तीन और सुल्तान हुए। इन तीनों को भी शायरी में दिलचस्पी थी और कुछ लिखा भी, परन्तु वह कोई विशेष उल्लेखनीय नहीं है। हां, ये तीनों (सुल्तान मुहम्मद क़ुतुबशाह, अब्दुला क़ुतुबशाह और अबुल हसन तानाशाह) कला-पारखी थे। कलाकारों का सम्मान करते थे तथा उन्हें बढ़ावा देते थे।

दक्कन में बीजापुर और गोलकुंडा के सुल्तानों के बाद भी शायरी होती रही-अधिकतर फ़ारसी में, कुछ उर्दू में। 17वीं सदी के आखिरी दशकों में वली मुहम्मद 'वली' (1667-1707) ने उर्दू शायरी को निखारा। 400 से अधिक ग़ज़लें लिखी। 'वली' की शायरी दक्कन से निकल कर उत्तरी भारत में भी पहुंची और प्रभावित किया। 'वली' को हम उर्दू का प्रथम शायर कह सकते हैं। उनकी दो ग़ज़लों के कुछ शेर :

याद करना हर घड़ी तुझ यार का
है वजीफ़ा मुझ दिल बीमार का। (पाठ)
आरज़ू-ए-चश्मे-कौसर नहीं *(स्वर्ग में बहने वाली नदी की इच्छा नहीं है)*
तश्ना-लब हूं शरबते-दीदार का। *(प्यासा)*
आक़बत क्या होवेगा, मालूम नहीं *(परिणाम)*
दिल हुआ है मुब्तला-ए-दिलदार का। *(ग्रस्त)*

जिसे इश्क का तीर कारी लगे
उसे ज़िंदगी जग में भारी लगे।
न होवे उसे जग में हरगिज़ क़रार
जिसे इश्क की बेकरारी लगे।
हर वक्त मुझ आशिके-ज़ार कूं
प्यारे तेरी बात प्यारी लगे।
न छोरे मुहब्बत दमे-मर्ग तक *(छोड़े, मरने तक)*
जिसे यार-जानी सूं यारी लगे। *(संग)*
'वली' कूं कहे तू अगर इक वचन
रकीबों के दिल में कटारी लगे *(प्रतिद्वंद्वी)*

स्पष्ट है, 'वली' ने ग़ज़ल के प्रारूप को निभाते हुए भाषा का सुंदर उपयोग किया है। उन्हें हम सहज ही उर्दू का पहला ग़ज़ल-गो कह सकते हैं।

'वली' के समकालीन दो अन्य शायर भी काबिले जिक्र हैं। सिराजुद्दीन खां 'आरज़ू' (1687-1756) तथा मिर्जा 'मज़हर' जाने-जहां (1699-1781)। इन दोनों ने फ़ारसी में लिखा और कुछ उर्दू में भी। इनका उर्दू कलाम बेहतरीन बन पड़ा है। दोनों की एक-एक ग़ज़ल के कुछ शेर देखिए :

आता है सुबह उठकर तेरी बराबरी को,
क्या दिन लगे हैं ख़ुरशीदे खाबरी को। *(नासमझ सूरज)*
दिल मारने का नुस्खा पहुंचा है आशिकों तक
क्या जानता है कोई, इस कीमियागरी को,
(लोहे को सोने में बदलने की कला)
उस तुन्द-खूं सनम से मिलने लगा हूं जब से,
हर कोई जानता है मेरी दिलावरी को। *(तुन्द-ख़ू- तेज़ स्वभाव वाला)*
अपनी फुंसूवारी से अब हम तो हार बैठे, *(जादू कमाल)*
बादे-सबा ये कहना, उसे दिलरूबा परी को।

अब ख़्वाब में हम उसकी सूरत को हैं तरसते,
ऐ 'आरज़ू' हुआ क्या बख़्तों की यावरी को (दोस्ती, मदद)

('आरज़ू')

उस गुल को भेजना है, मुझे खत, सबा के हाथ
उस वास्ता लगा हूं चमन की हवा के साथ।
बर्गे-हिना ऊपर लिखो अहवाल-ए-दिल मेरा, *(मेहंदी की पत्तियां, हाल)*
शायद कि जा लगे वो किसी मीरज़ा के हाथ *(महत्वपूर्ण व्यक्ति)*
'मज़हर' छुपा के रख दिले-नाज़ुक को अपने तू
ये शीशा बेचना है किसी मीरज़ा के हाथ।

('मज़हर')

'मज़हर' की एक अन्य ग़ज़ल से कुछ शेर :

न तू मिलने के अब क़ाबिल रहा है
न मुझ को वो दिमाग़-ओ-दिल रहा है।
ये दिल कब इश्क के क़ाबिल रहा है,
कहां इसको दिमाग़-ओ-दिल रहा है।
खुदा के वास्ते इसको न टोको,
यही इक, शहर में कातिल रहा है।

(अगले अंक में जारी)

संपर्क - 9896587345

अर्जुन अवार्डी पहली महिला पहलवान - गीतिका जाखड़

□ अविनाश सैनी

(खेल के क्षेत्र में हरियाणा नए कीर्तिमान स्थापित कर रहा है, जो खिलाड़ियों की जी तोड़ मेहनत और लगन और निरंतर अभ्यास का नतीजा है। गीतिका जाखड़ अर्जुन अवार्डी पहली महिला पहलवान है। प्रस्तुत है गीतिका के संघर्ष पर प्रकाश डालता अविनाश सैनी का लेख। देस हरियाणा पत्रिका के संपादक मंडल से जुड़े रंगकर्मी-संस्कृतिकर्मी अविनाश सैनी रोहतक निवासी हैं। वर्षों तक नवभारत टाइम्स में रिपोर्टिंग की। राज्य संसाधन केंद्र हरियाणा, रोहतक में कार्य करते हुए हरकारा पत्रिका के संपादन से जुड़े रहे हैं। आकाशवाणी के उदघोषक हैं। पिछले दो दशकों से साक्षरता अभियान में नेतृत्वकारी भूमिका निभा रहे हैं - सं.)

कुश्ती के खेल में हरियाणा ने खास पहचान हासिल की है। महिला कुश्ती की तो शुरुआत ही हरियाणा से हुई है। पहली महिला ओलम्पियन और कॉमनवेल्थ खेलों की पहली स्वर्ग पदक विजेता पहलवान गीता फौगाट, ओलम्पिक में पदक जीतकर देश का नाम रोशन करने वाली पहली महिला पहलवान साक्षी मलिक और एशियाई तथा कॉमनवेल्थ, दोनों खेलों में गोल्ड मेडल जीतने वाली पहली महिला पहलवान विनेश फौगाट भी हरियाणा की ही रहने वाली हैं। सबसे अधिक बार भारत केसरी का खिताब अपने नाम करने वाली सुमन कुण्डू भी इसी प्रदेश की देन है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अभी तक ओलम्पिक खेलों में देश का प्रतिनिधित्व करने वाली सभी महिला पहलवान हरियाणा की रही हैं। इसी कड़ी में आइए बात करते हैं प्रतिष्ठित "अर्जुन अवार्ड" हासिल करने वाली पहली महिला पहलवान गीतिका जाखड़ की।

2008 में विभिन्न खेलों के उत्कृष्ट खिलाड़ियों को प्रदान किए जाने वाले देश के इस सबसे बड़े खिताब से नवाजी गई गीतिका जाखड़ को भारतीय खेलों के इतिहास में पहली बार कॉमनवेल्थ चैंपियनशिप की सर्वश्रेष्ठ पहलवान चुने जाने का गौरव भी प्राप्त है। गीतिका को यह सम्मान 2005 में प्राप्त हुआ। इसके अलावा, वह ऐसी महिला पहलवान है जिसने सर्वप्रथम एशियाई खेलों में दो बार पदक जीते हैं। उसने 2006 और 2014 के एशियाई खेलों में पदक जीतकर यह उपलब्धि हासिल की। गीतिका के बाद अब विनेश फौगाट भी दो एशियाई खेलों में पदक (2014 में कांस्य और 2018 में स्वर्ण पदक) जीतने का कारनामा कर चुकी है।

18 अगस्त1985 को हिसार ज़िले के अग्रोहा में जन्मी गीतिका के मन में बचपन से ही खिलाड़ी बनने की चाह थी। उसने एथलेटिक्स से अपने खेल जीवन की शुरुआत की। घर में खेलों का माहौल था - पिता बलजीत सिंह कोच थे तो दादा अमरचंद जाखड़ ,पहलवान। दादा को देखकर वह भी पहलवान बनने की सोचती पर कुश्ती के लिए पर्याप्त माहौल के अभाव में कुछ न कर पाती।

1998 में उनका परिवार अग्रोहा से हिसार आ गया। वहाँ उसने दूसरी लड़कियों को कुश्ती करते देखा तो बस उसने भी पहलवान बनने की ठान ली। इस तरह उसने 13 वर्ष की आयु में कुश्ती की शुरूआत की और 4 महीने बाद ही मणिपुर में हुए राष्ट्रीय खेलों में अपनी चुनौती पेश कर दी। राष्ट्रीय खेलों में भाग लेने वाली देश की सबसे कम उम्र की पहलवान बनी गीतिका वहाँ चौथे स्थान पर रही। सन 2001 में हुई राष्ट्रीय चैंपियनशिप में उसने सब जूनियर, जूनियर और सीनियर, तीनों वर्गों में गोल्ड मेडल जीत कर इन खेलों के तीनों प्रारूपों में स्वर्ण पदक जीतने वाली देश की सबसे कम उम्र की पहलवान बनने का गौरव हासिल किया। गीतिका का यह रिकॉर्ड आज भी कायम है।

आधुनिक कुश्ती के साथ-साथ गीतिका ने पारम्परिक कुश्ती में भी महारत हासिल की और सन 2000 में केवल15 वर्ष की आयु में भारत केसरी का खिताब जीतने में कामयाब रही। इस दंगल में उसने देश की पहली भारत केसरी पहलवान सोनिका कालीरमण को पटखनी दी। इसके बाद गीतिका ने लगातार 9 वर्षों तक भारत केसरी का खिताब अपने पास रखा।

राष्ट्रीय स्तर पर लगातार सफलता के झंडे गाड़ने के साथ-साथ गीतिका ने 2002 में 17 वर्ष की आयु में वर्ल्ड रेसलिंग चैंपियनशिप में भाग लेते हुए अपने अंतरराष्ट्रीय कैरियर की शुरूआत की। न्यूयॉर्क में हुई इस चैंपियनशिप में वे क्वार्टर फाइनल तक पहुँची। सन 2003 में उसने 'एथेन्स वर्ल्ड रेसलिंग चैंपियनशिप में शिरकत की और यहाँ भी क्वार्टर फाइनल तक का सफर तय किया। इसी साल उसने एशियन रेसलिंग चैंपियनशिप, नई दिल्ली में 'रजत' और कॉमनवेल्थ चैंपियनशिप, लंदन में 'स्वर्ण' पदक जीतकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा लिया। सन 2005 में चीन में हुई 'एशियन

रेसलिंग चैंपियनशिप' में रजत पदक जीतने के बाद 'कॉमनवेल्थ चैंपियनशिप' में भी उसने दूसरी बार स्वर्ण पदक अपने नाम कर लिया। वह चैंपियनशिप की सर्वश्रेष्ठ पहलवान यानी 'रेसलर ऑफ़ द टूर्नामेन्ट' भी चुनी गई।

इसी साल लिथुआनिया में हुई 'वर्ल्ड रेसलिंग चैंपियनशिप' में 'सिल्वर मेडल' जीतकर उसने दुनिया की सर्वश्रेष्ठ पहलवानों में अपना नाम शामिल करवा लिया। 2006 में गीतिका ने अपने खेल के स्तर को और ऊँचा उठाते हुए दोहा एशियाई खेलों में रजत पदक जीता जो इन खेलों में किसी भी भारतीय महिला पहलवान द्वारा जीता गया पहला पदक था। यही नहीं, एशियन गेम्स में यह उस समय तक किसी भी भारतीय पहलवान को मिलने वाला सर्वोच्च पदक था।

2007 में गीतिका ने ओंटेरियो (कनाडा) में हुई कॉमनवेल्थ चैंपियनशिप में रजत पदक हासिल करने के साथ-साथ गोहाटी राष्ट्रीय खेलों और नई दिल्ली सीनियर नेशनल रेसलिंग चैंपियनशिप में गोल्ड मेडल जीते। सन 2010 में गीतिका को गंभीर चोट लग गई। इससे एक बार तो लगा कि अब गीतिका के खेल कैरियर पर पूर्ण विराम लग जाएगा लेकिन ज़िद्द की पक्की इस खिलाड़ी ने जुझारूपन की मिसाल पेश करते हुए कमबैक किया और 2012 की सीनियर नेशनल चैंपियनशिप में स्वर्ण पदक जीतकर अपने आलोचकों का मुँह बंद कर दिया। सन 2014 के ग्लास्गो कॉमनवेल्थ खेलों में रजत पदक पर कब्ज़ा जमाने के बाद इसी साल उसने इंचियोन एशियाई खेलों में कांस्य पदक झटक कर इन खेलों में अपना दूसरा पदक जीता।

गीतिका की खेल उपलब्धियों को सम्मान प्रदान करते हुए हरियाणा सरकार ने उन्हें 2003 में 'भीम अवार्ड' और भारत सरकार ने 2006 में 'अर्जुन अवार्ड' से नवाजा।2008 में हरियाणा पुलिस में सीधे डी.एस.पी. नियुक्त की गई गीतिका को 2009 में 'कल्पना चावला एक्सीलेंस अवार्ड फ़ॉर आउटस्टैंडिंग वीमेन' भी प्रदान किया गया।

निःसंदेह गीतिका की उपलब्धियाँ हमेशा युवा खिलाड़ियों को प्रेरित करती रहेंगी।

संपर्क - 9416233992

दयाल चंद जास्ट की कविताएं

(दयाल चंद जास्ट, रा.उ.वि.खेड़ा, करनाल में हिंदी के प्राध्यापक हैं। कविता लेखन व रागनी लेखन में निरंतर सक्रिय हैं)

(1)

मैं
सूखे पत्ते सी
उड़ रही हूं
पहुंचूंगी किस ओर
ये तो मुझको पता नहीं
पहुंचूंगी भी या नहीं
या हवा में
उड़ती ही रहूंगी
या कि
मिल जाऊंगी धूल में
चूर-चूर होकर
या कि फैंकेगा
कहीं दूर ले जाकर
कोई झंझावात
जहां होगी दूसरी दुनिया
जहां होगा मेरे सपनों का राजकुमार
और मुझे
ले जाएगा अपने देश
अपनी गाड़ी में बिठा।

(2)

फुदकती, थिरकती
कोई चिड़िया
कब पिंजरे में बंद हो जाए
उसे पता नहीं चलता
पिंजरा सोने का हो
या चांदी का
या हो लोहे का
कैसा भी हो
पिंजरा तो पिंजरा होता है
उसमें बंद कैदी का दर्द
एक सा होता है
चिड़िया को उड़ने दो
खुले आकाश में
दाना-चुग्गा चुगने दो
हरी-भरी धरा पर
प्रियतम को मिलने दो
प्यार के क्षितिज पर।

संपर्क - 9466220146

राजेंद्र गौतम के दोहे

(वरिष्ठ साहित्यकार एवं समीक्षक राजेंद्र गौतम, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग से सेवानिवृत हुए हैं। इनके दोहे छंद-निर्वाह की कारीगरी नहीं, बल्कि आधुनिक कविता के तमाम गुण लिए हैं। कात्यक की रुत दोहों में एक विशेष बात ध्यान देने की ये है कि इनमें हरियाणा की जलवायु-मौसम के साथ-साथ प्रकृति में हो रहे गतिमय परिवर्तन और ग्रामीण जीवन के आर्थिक-सांस्कृतिक पक्षों को एक चित्रकार की तरह प्रस्तुत किया है - सं.)

कात्यक की रुत आ गई

कात्यक मै
काई छँटी
निर्मल होगे ताल
कंठारै गोरी खड़ी
जल मैं दमकैं गाल

कट्या बाजरा
काल्ह था
आज कटैगी ज्वार
उड़द-मूँग-त्यल पाक गे
हर्या-भर्या सै ग्वार

मैं तो
इस क्यारी चुगूँ
तूँ उसकी कर ख्यास
नणदी तेरे रूप-सी
सुधरी खिली कपास

पके धान के
खेत नै
प्यछवा रही दुलार
स्योनै की क्यारी भरी
धरती करै सिंगार

बाँध सणी के
घूंघरू
धर छाती बंभूल
कात्यक की रुत आ गई
दुख-दरदाँ नैं भूल

दिन ढलदें
उडकै चली
जब सारस की डार
धान्नाँ आलै खेत मैं
उठ्ठै थी झनकार

मीठी कचरी
फल रही
थलियां आलै खेत
मीठी ठ्यारी आ गई
ठंडी-ठंडी रेत

मनै दिवाली
खूब गी
दीव्याँ की रुजनास
हीड़ो- कप्पड़ बाल़
कर गाल़ा मैं परकास

खील-पतासे
थाल भर
लिया गोरधन पूज
माँ-जाया जुग-जुग जियो
परसूँ भैया दूज

सारी छोरी
गाल़ की
जावैं कात्यक न्हाण
भजन राम के गा रही
सुख राखैं भगवान

चोगरदै
गूँजण लगे
'दे' ठावण के गीत
कात्यक की इस ग्यास नै
सारे अपणे मीत

बीत्या कात्यक
मास जा
लगी कूँज कुरलाण
बाल्यम बसे बिदेस मैं
कूण बचावै ज्यान

खेताँ मैं
म्हारे राम जी
खेताँ मैं भगवान
खेताँ मैं सै द्वारका
गढ़-गंगा का न्हाण

कुछ दिन मैं
कोल्हू चालैं
गुड़गोई के ठाठ
भेली पै भेली बणैं
बजैं ताखड़ी-बाट

अम्मा का संसार

चला कहीं जाये नहीं मेहमानों का ध्यान
धीरे-धीरे माँ हुई कोने का सामान।

बड़का दिल्ली जा बसा मँझला दूजे देश
दीपक धर माँ 'थान' पर माँगे कुशल हमेश।

व्यर्थ सभी संचार हैं तार और बेतार
खटिया तक महदूद है अम्मा का संसार।

रखी ताक पर ताकती बापू की तस्वीर
छिपा गयी हँस फेर मुख माँ नयनों का नीर।

फूलों, काँटों से भरी कैसी थी यह राह
पीहर से ससुराल तक फैली एक कराह

सुनी-अनसुनी रह गयी माँ के दिल की हूक
आँखों आगे जब खुला यादों का संदूक

दोपहरी की ऊंघ का कैसा यह जंजाल
एक घडी में जी लिए दुःख के सत्तर साल

चूल्हे-चौके में खटे जीवन का अनुवाद.
माँ की पोथी में मिले लिखे यहीं संवाद

अनबोला कब तक चले सास-बहू के बीच
तुतले बोलों ने दिया सारा रोष उलीच।

संपर्क - 9868140469

मैं हिन्दू भी हूं और मुसलमान भी

□ विनोबा भावे

रामकृष्ण परमहंस ने इस्लाम, ईसाई आदि अन्य धर्मों की उपासना की थी, उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करने के लिए साधना की थी और सब धर्मों का समन्वय उन्हें प्राप्त हुआ था। उन्होंने भिन्न-भिन्न धर्मों में की जाने वाली उपासनाओं का अध्ययन किया, अनुकरण किया तथा परिशीलन किया। इन उपासनाओं के द्वारा जो अनुभूतियां हुई, उनका मनन, चिंतन करके सभी धर्मों को आत्मसात करने की साधना की। मैंने सभी धर्मों का अत्याधिक प्रेम से और बड़ी गहराई से अध्ययन किया है। सभी धर्मों की विशेषताएं देखने का मैंने प्रयत्न किया है और उनके सार को ग्रहण किया है हम सबको सभी वर्गों के प्रति अपनत्व के भाव का अनुभव करना है।

मुझे इसका अनुभव है। जब मैंने अपने हाथ में 'कुरान शरीफ' लिया, तब मैंने देखा कि जितने भक्ति भाव से मैं वेद पढ़ सकता हूं, उतने ही भक्ति भाव से कुरान भी पढ़ सकता हूं। कुरान के कई भागों को पढ़ते हुए तो मैं एकदम गदगद् हो जाता था और मेरी आंखें भर आती थीं। जब तक मुझे विश्वास नहीं हो गया कि मैं इसके साथ एकाकार हो गया हूं, उसमें पूरी तरह डूब गया हूं, तब तक मैंने कोई टिप्पणी आदि अवश्य कर रखी थी, लेकिन कुरान के उद्धरण आदि का काम नहीं किया था। मुझे स्वयं के प्रति जब इस प्रकार का अनुभव हुआ, तभी मैंने कुरान के दोहन का काम शुरू किया। 'कुरान-सार' नामक पुस्तिका जब प्रकाशित हुई तब पाकिस्तान के जाने-माने समाचार-पत्र 'डॉन' ने इसके प्रति आक्षेप किया था कि 'सार' वह भी 'कुरान' का और करने वाला भी एक काफिर? लेकिन जब पुस्तक पढ़ी गयी तब हिंदुस्तान के मुसलमानों ने स्वीकार किया कि बहुत अच्छा किया गया है। बाद में रावलपिंडी के एक अच्छे समाचार-पत्र में 'कुरान-सार' की बहुत सुंदर समीक्षा छपी थी, यानी वह स्वीकृत हो गयी थी। यह एक बहुत बड़ी घटना हो गयी कि कुरान का भी सार निकाला जा सकता है। सार निकालना असंभव नहीं वरना संभव है अर्थात् धर्मविरुद्ध नहीं है।

कश्मीर में मुसलमानों के बीच रहने और घूमने का अवसर मिला। मैंने उन लोगों से कहा कि 'देखो भाई! वेद, कुरान आदि किसी भी ग्रंथ को जस का तस अपने सिर पर चढ़ाने के लिए मैं तैयार नहीं हूं। उनमें जो सार तत्व होगा, उसे ही मैं ग्रहण करूंगा अन्यथा सभी ग्रंथ मेरे लिए एक बोझ बन जाएंगे।'

मेरी पद यात्रा की अवधि में एक स्थान पर गाय का कत्ल हो गया था और इसके कारण वहां का वातावरण तनावपूर्ण हो गया था। मैं उस स्थान पर पहुंचा। उस दिन शुक्रवार था इसलिए मस्जिद में गांव के पंद्रह-बीस लोग जमा थे। मैंने मस्जिद में ही सभा की। मैंने कहा कि अल्लाह यदि गाय, बकरे के बलिदान से ही खुश हो जाता तो वह पैगम्बर क्यों भेजता? इसके लिए तो कसाई ही पर्याप्त था? कुरान में स्पष्ट कहा गया है कि अल्लाह तो प्रेम का भूखा है, बलिदान का नहीं।

इस्लाम के प्रति हमारे देश में बहुत अधिक गलतफहमी है। यहां पर मुसलमान बादशाहों ने जो अत्याचार किये उन्हें हम लोगों ने इस्लाम के साथ जोड़ दिया किंतु कुरान में तो कहा गया है कि सभी जमातें एक हैं। सभी धर्मों का एक ही परिवार है। कुछ लोग इसमें भेद डालते हैं लेकिन सभी भेद झूठे हैं। इस्लाम में बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जबरदस्ती करना अन्याय है। परमेश्वर को एक ही मानकर सबके साथ प्रेम रखना चाहिए, यही इस्लाम की शिक्षा है, इस्लाम यानि ईश्वर की शरण और इस्लाम यानि शांति। इसके अतिरिक्त तीसरा और कोई मतलब इस्लाम का नहीं है। 'इस्लाम' शब्द में सलम धातु है। इसका अर्थ है शरण में जाना। इसी धातु से सलाम शब्द बना है। सलाम यानि शांति।

इससे भी बढ़कर कुरान में एक सुंदर आयत है- 'हम किसी भी रसूल में फर्क नहीं करते' अर्थात् दुनिया में केवल मोहम्मद ही एक रसूल नहीं है, यीशू भी एक रसूल हैं और मूसा भी, दूसरे भी बहुत से रसूल हो गए हैं जिनका हम नाम भी नहीं जानते। 'हम रसूलों में कोई फर्क नहीं करते- यह इस्लाम का विश्वास है। मुझे लगता है कि हिंदुओं की भी ऐसी ही निष्ठा है।' वे कहते हैं कि दुनिया के सद्पुरुषों ने जो मार्ग बताया है, वह एक ही है। उसमें जो भेद उत्पन्न होता है वह हमारी संकुचित वृत्ति के कारण ही उत्पन्न होता है। यह देखने लायक है कि

सभी धर्मों में कितना अधिक साम्य है।

कई वर्षों पहले मुंबई में इस्लाम के एक अध्ययनकर्ता श्री मुहम्मद अली का 'कुरान का अध्ययन' विषय पर भाषण हुआ था। अपने भाषण में उन्होंने जो कहा था वह स्मरण रखने योग्य है। उन्होंने कहा 'कुरान के उपदेशों के संबंध में, हिन्दुओं या ईसाइयों के मन में उठने वाली विपरीत भावनाओं की जिम्मेदारी मुसलमानों की है। अन्य धर्मों के प्रति जो व्यवहार कुरान का मान लिया जाता है वास्तव में इसके लिए कुरान जिम्मेदार नहीं है वरन् ऐसे कई मुसलमान जिम्मेदार हैं जो कुरान के उपदेश के विरुद्ध आचरण कर रहे हैं।'

ईश्वर को संस्कृत में ओम् कहते हैं और अरबी में अल्लाह। दोनों एक ही हैं। अबुल कलाम आज़ाद ने कुरान पर एक सुंदर पुस्तक उर्दू में लिखी है। इसकी प्रस्तावना में इस्लाम को उन्होंने बहुत अच्छी तरह से समझाया है। इसलिए इस्लाम के प्रति गलतफहमी रखना और सभी मुसलमान खराब हैं, ऐसा भाव मन में रखना, अत्यंत गलत है। 'परमेश्वर ने किसी एक समुदाय को खराब बनाया' - ऐसा कहना ईश्वर पर बहुत बड़ा आरोप लगाना है। यह एक गलत विचारधारा है।

बचपन में एक बार किसी ने मुझसे कहा कि उस पेड़ पर भूत है, इससे मैं डर गया, लेकिन मेरी मां ने कहा कि भूत-वूत कुछ नहीं है, अगर है तो क्या दिखाई नहीं देता। तू पेड़ के पास जाकर देख। मैंने पेड़ के पास जाकर देखा कि भूत तो है ही नहीं, बढिय़ा मज़ेदार पेड़ है। कहने का मतलब है कि पास जाने से डर समाप्त हो गया, इसलिए पास जाकर परिचय प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से झूठ-भ्रम समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार सभी धर्मों के पास आकर मैंने परिचय प्राप्त करने का प्रयास किया है। इसी अर्थ में, मैं कहता हूं कि मैं हिन्दू भी हूं और मुसलमान भी हूं, मैं ईसाई भी हूं और बौद्ध भी हूं।

साभार-सांप्रदायिकता-भाग-1, 2014

जयलाल दास जयन्ती पर साहित्यकार एवं कलाकार सम्मानित

□ सोमेश खिंच्ची

भिवानी (20 जनवरी 2019) लोक साहित्यकार जयलाल दास की 87वीं जयन्ती पर साहित्य के क्षेत्र में अपनी उत्कृष्ट सेवाएं देने और कला के क्षेत्र में विलक्षण प्रतिभा के धनी दर्ज़न भर साहित्यकार एवं कलाकार सम्मानित हुए। लोक साहित्यकार जयलाल दास की 87वीं जयन्ती पर साहित्यकार आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट के स्थानीय आनन्द मार्ग, कोंट रोड़ स्थित आवास पर पुस्तक लोकार्पण एवं सम्मान समारोह आयोजित किया गया। समारोह की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार विजेन्द्र गाफ़िल ने की । मुख्य अतिथि राजकुमार पंवार व हिसार से पधारी श्रीमती पूनम विशिष्ट अतिथि थी। लेखिका मीना भार्गव द्वारा लिखी गई पुस्तक 'रेडियो नाटककार आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट' का लोकार्पण हुआ। श्री महेन्द्र जैन वरिष्ठ साहित्यकार हिसार द्वारा प्रस्तुत जयलाल दास के चित्र का लोकार्पण हुआ व उनके द्वारा जयलाल दास के जीवन-चरित पर लिखे गए दोहों का हिसार की श्रीमती पूनम मनचन्दा ने सस्वर पाठ किया।

साहित्यकार सम्मान के तहत श्री महेन्द्र जैन को जयलाल दास स्मृति साहित्य सम्मान 2019, श्रीमती मीना भार्गव को श्रीमती मनभरी देवी स्मृति साहित्य सम्मान 2019, डॉ. मजीद शेख को जयलाल दास स्मृति साहित्यसेवी सम्मान 2019, श्री नीरज कुमार मनचन्द, डॉ. तिलक सेठी और श्री अशोक कुमार वशिष्ठ जयलाल दास साहित्य साधक सम्मान 2019, दूरदर्शन हिसार की समाचार वाचिका ऋतु कौशिक को श्रीमती मनभरी देवी साहित्य साधिका सम्मान 2019, भिवानी की गायिका कुमारी संजना को श्रीमती मनभरी देवी कला साधिका सम्मान 2019 और गाँव दिनोद ज़िला भिवानी के चित्रकार राजबीर सिंह जांगड़ा को जयलाल दास स्मृति कला साधक सम्मान 2019 से अलंकृत किया गया। इस अवसर पर सम्मानित साहित्यकार एवं कलाकारों ने काव्य पाठ भी किया। प्रदेश भर से आए साहित्यकार एवं कलाकारों के अलावा स्थानीय कवि एवं साहित्यकारों के रूप में अनिल शर्मा वत्स, महेन्द्र सागर, ज्ञानेन्द्र तवतिया, महेन्द्र सिंह, पृथ्वी सिंह, अजीत, दलबीर मान, बनवारी लाल कामरेड, देवांश, सोमेश और सर्वेश आदि भी उपस्थित थे। इस अवसर पर पुस्तक प्रदर्शनी भी आयोजित की गई। चित्रकार राजबीर सिंह जांगड़ा के चित्रों की प्रदर्शनी लगी। उल्लेखनीय है कि यह सम्मान समारोह प्रति वर्ष लोकसाहित्यकार जयलाल दास की जयन्ती 20 जनवरी पर उनके साहित्यकार वंशजों द्वारा आयोजित किया जाता है।

किताब का लिख्या

□ राजकिशन नैन

(राजकिशन नैन हरियाणवी संस्कृति के ज्ञाता हैं और बेजोड़ छायाकार हैं। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं उनके चित्र प्रकाशित होते रहे हैं।)

घसीटा कतई भोला अर घणा सीधा था। आठ पहर चौबीस घड़ी किताबां कै चिपट्या रहया करदा। दुनियां म्हं के होरया सै अर क्यूं होरया सै इसकी उसनै रत्ती भर परवाह ना थी। पर एक बात ओ जरुर सोच्या करदा। अक गाम के सब लोग उसनै सब तैं फालतू स्याणा समझैं।

एक बर की बात। पोह-माह का पाळा पड़ै था। रात का बखत था। घसीटा गुदड़ै मैं बैठया, सौड़ ओढीं कोए किताब पढ़ण म्हं मगन था। स्याहमी आळे मैं दीवा धरया था। एकदम उसकी निगाह एक लैन पै अटकगी। लिख्या था - 'जिसकी डाढ़ी उसकै मुंह तै बड्डी हो सै, ओ बावली बूच हो सै'

या लैन पढ़दींए घसीटै नै आई झुरझुरी। तावळे से नै आपणी डाढ़ी नापी। डाढ़ी उसकै मुंह तै बड़ी थी। घसीटै का दिमाग घूमग्या अर किताब पढ़णा भूलग्या। सोचण लाग्या। जिन लोगां नै या किताब मेरै तैं पहल्यां पढ़ ली होगी, वैं तै मन्नै देख दीं ए जांण जांदे होंगे अक मैं बावली बूच सूं। या तै तुरंत छोटी करणी चाहिए। घसीटा दुखी होग्या। घरां कैंची थी, पर टोहवै कोण। चाकू तैं डाढ़ी बणान की सोची, पर उसकी धार खूहंडी हो री थी।

एकदम दीवे कान्ही लखाकै ओ बड़बड़ाया, 'आच्छा चाळा होया। मैं तो साच्चीए बावळा होग्या। दीवा तै मन्नै देख्याए ना। के जरुरत थी मन्नै चाकू की अर उस्तरे-कैंची की। 'दीवै की लौ तै डाढ़ी की नोक जला दयूं सूं।'

फेर के था, घसीटे नै दो-तीन बै नाप कै डाढ़ी पकड़ी अर एक नौक दीवै कान्ही कर दी। फक्क दे सी चिरड़का उठ्या अर पलक झपकण तैं पहल्यां डाढ़ी फूस की ढाल जळगी।

घसीटै नै भाज कै पाणी कै पहंडे मैं मुंह देख्या। हाय, यू मन्नै के करया। मैं तै साच्चीए बावली बूच सूं। किताब छापणियां नै ठीकए लिख्या सै।

डरैगा सो मरैगा

एक बै जंगल के सारे खरगोशां नै आपणी सभा करी अर सभ आपणे-आपणे दुःखां का रोणा रोण लागे। एक जणां बोल्या, 'आखिर कित लिकड़ कै चालां? पीण नै पाणी रह्या ना, तपदी लू चाल्लै, खेतां मैं जाड़ा (घास) ना।'

'तन्नै पाणी की अर चारै की पड़ री सै, आड़ै जान पै बण री सै। सारी हाण शिकारी कुत्ते अर लोह का डंडूक (बंदूक) लेहीं आदमी गेल्यां पड़े रहै सै।' एक दूसरा खरगोश बोल्या।

एक तीसरा बोल्या, 'भाई सच्चाई घणी कड़वी हो सै अर साची बात या सै अक राम नै म्हारी गेल्यां कती कु न्या करया सै। हाम इतणे छोटे बणाए अक किसे जानवर तै हाम बराबरी ए ना कर सकदे।'

'बराबरी के खाक करां। राम जी तैं इतणा बी ना हुआ अक हाम न सींग ए दे देंगा, ताकि हाम छोटे-मोटे जानवरां तैं आपणा बचा कर लेंदे।' एक और खरगोश बोल्या।

'तो फेर यूं गया गुजरा अर बिना मान का जीवन जीण का के फैदा सै?

'कोए फैदा नहीं, घणा आच्छा तो यू रहैगा अक हाम सारे डूब कै मरज्यां अर इस दुःख तै पांडा छुटाल्ल्यां।' एक नै सलाह दी।

इस बात पै सारे राजी होगे अर कटठे होकै जोहड़ में डूबण ताहीं चाल पड़े। वै जोहड़ पै पहुंचे ए थे अक कंठारै बैठे मिंडक उन तैं डर कै पाणी में जा बड़े। अर मिंडका के खुड़के तैं डर कै माक्खी-माच्छर उड़गे। या बात देख कै एक स्याणा बोल्या, 'भाइयो डटो।'

'क्यूं के बात सै, के मरण तै डरग्या?'

'ईब मरण अर डरण की तै बात ए ना रही।'

'पर हाम आए तै आडै मरण सां।'

'आए थे पर ईब नहीं मरांगे।' 'पर क्यूं?' 'क्यूं के, देख्या नहीं? म्हारै तै डर कै मिंडक भाजगे, अर जो म्हारे तै डरे, उन तै डर कै माक्खी उड़गे। इसका मतलब यू अक जै म्हारै तै कुछ ठाढै सै तै हाम बी किसै तै ठाढै सां। हाम क्यों आपणे नै छोटे मान कै जी छोड़ां अर क्यूं खामखां मरां?' स्याणे खरगोश की स्याणी बात सभ के समझ मैं आगी अर वै सारे उल्टे चाले गए।

साभार: हरियाणवी लघुकथाएं, भारत ज्ञान विज्ञान समिति

संपर्क - 9813278899

'वेटिंग फॉर वीजा '

□ डॉ. भीम राव आंबेडकर

डॉ. भीमराव आंबेडकर की पुस्तिका 'वेटिंग फॉर वीजा' संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल है। पुस्तिका के संपादक प्रो. फ्रांसेज डब्ल्यू प्रिटचेट ने आंतरिक साक्ष्यों के आधार पर अनुमान लगाया है कि यह 1935 या 1936 की रचना है। 'वेटिंग फॉर वीजा ' का प्रकाशन पहले पहल पीपल्स एजुकेशन सोसायटी द्वारा 1990 में हुआ था।

बहुत कम लोगों को यह एहसास है कि इतने प्रतिभाशाली और काबिल होने के बाद भी सिर्फ महार परिवार में जन्म होने के कारण डॉ. भीमराव आंबेडकर को कितना अपमान-तिरस्कार सहना पड़ा। एक बार तो वे मरते-मरते बचे। भारतीय संविधान ने छुआछूत को समाप्त कर दिया है, लेकिन अभी भी दलित को सार्वजनिक कुएँ, तालाब से पानी पीने से रोक दिया जाता है और मंदिरों में जाने नहीं दिया जाता। यह पुस्तिका बताती है कि आंबेडकर कैसे बनता है ? प्रस्तुत है आंबेडकर की पुस्तिका -

विदेश में लोगों को छुआछूत के बारे में पता तो है लेकिन इससे वास्तविक सामना नहीं पड़ने के कारण वे यह नहीं जान सकते कि दरअसल यह प्रथा कितनी दमनकारी है। उनके लिए यह समझ पाना मुश्किल है कि बड़ी संख्या में हिंदुओं के गाँव के एक किनारे कुछ अछूत रहते हैं, हर रोज गाँव का मैला उठाते हैं, हिंदुओं के दरवाजे पर भोजन की भीख माँगते हैं, हिंदू बनिया की दुकान से मसाले और तेल खरीदते वक्त कुछ दूरी पर खड़े होते हैं, गाँव को हर मायने में अपना मानते हैं और फिर भी गाँव के किसी सामान को कभी छूते नहीं या उसे अपनी परछाईं से भी दूर रखते हैं।

अछूतों के प्रति ऊँची जाति के हिंदुओं के व्यवहार को बताने का बेहतर तरीका क्या हो सकता है। इसके दो तरीके हो सकते हैं। पहला, सामान्य जानकारी दी जाए या फिर दूसरा, अछूतों के साथ व्यवहार के कुछ मामलों का वर्णन किया जाए। मुझे लगा कि दूसरा तरीका ही ज्यादा कारगर होगा। इन उदाहरणों में कुछ मेरे अपने अनुभव हैं तो कुछ दूसरों के अनुभव। मैं अपने साथ हुई घटनाओं के जिक्र से शुरुआत करता हूँ।

बचपन में दुस्वप्न बनी कोरेगाँव की यात्रा

हमारा परिवार मूल रूप से बांबे प्रसिडेंसी के रत्नागिरी जिले में स्थित डापोली तालुके का निवासी है। ईस्ट इंडिया कंपनी का राज शुरू होने के साथ ही मेरे पुरखे अपने वंशानुगत धंधे को छोड़कर कंपनी की फौज में भर्ती हो गए थे। मेरे पिता ने भी परिवार की परंपरा के मुताबिक फौज में नौकरी कर ली। वे अफसर की रैंक तक पहुँचे और सूबेदार के पद से सेवानिवृत्त हुए। सेवानिवृत्ति के बाद मेरे पिता परिवार के साथ डापोली गए, ताकि वहाँ पर फिर से बस जाएँ। लेकिन कुछ वजहों से उनका मन बदल गया। परिवार डापोली से सतारा आ गया, जहाँ हम 1904 तक रहे।

मेरी याददाश्त के मुताबिक पहली घटना 1901 की है, जब हम सतारा में रहते थे। मेरी माँ की मौत हो चुकी थी। मेरे पिता सतारा जिले में खाटव तालुके के कोरेगाँव में खजांची की नौकरी पर थे, वहाँ बंबई की सरकार अकाल पीड़ित किसानों को रोजगार देने के लिए तालाब खुदवा रही थी। अकाल से हजारों लोगों की मौत हो चुकी थी।

मेरे पिता जब कोरेगाँव गए तो मुझे, मेरे बड़े भाई और मेरी बड़ी बहन के दो बेटों को (बहन की मौत हो चुकी थी) मेरी काकी और कुछ सहृदय पड़ोसियों के जिम्मे छोड़ गए। मेरी काकी काफी भली थीं लेकिन हमारी खास मदद नहीं कर पाती थीं। वे कुछ नाटी थीं और उनके पैरों में तकलीफ थी, जिससे वे बिना किसी सहारे के चल-फिर नहीं पाती थीं। अक्सर उन्हें उठा कर ले जाना पड़ता था। मेरी बहनें भी थीं। उनकी शादी हो चुकी थी और वे अपने परिवार के साथ कुछ दूरी पर रहती थीं।

खाना पकाना हमारे लिए एक समस्या थी। खासकर इसलिए कि हमारी काकी शारीरिक असहायता के कारण काम नहीं कर पाती थीं। हम चार बच्चे स्कूल भी जाते थे और खाना भी पकाते थे। लेकिन हम रोटी नहीं बना पाते थे इसलिए पुलाव से काम चलाते थे। वह बनाना सबसे आसान था क्योंकि चावल और गोश्त मिलाने से ज्यादा इसमें कुछ नहीं करना पड़ता था।

मेरे पिता खजांची थे इसलिए हमें देखने के लिए सतारा से आना उनके लिए संभव नहीं हो पाता था। इसलिए उन्होंने चिट्ठी लिखी कि हम गर्मियों की छुट्टियों में कोरेगाँव आ जाएँ। हम बच्चे यह सोचकर ही काफी उत्तेजित हो गए, क्योंकि तब तक हममें से किसी ने भी रेलगाड़ी नहीं देखी थी।

भारी तैयारी हुई। सफर के लिए अंग्रेजी स्टाइल के नए कुर्ते,

रंग-बिरंगी नक्काशीदार टोपी, नए जूते, नई रेशमी किनारी वाली धोती खरीदी गई। मेरे पिता ने यात्रा का पूरा ब्यौरा लिखकर भेजा था और कहा था कि कब चलोगे यह लिख भेजना ताकि वे रेलवे स्टेशन पर अपने चपरासी को भेज दें जो हमें कोरेगाँव तक ले जाएगा। इसी इंतजाम के साथ मैं, मेरा भाई और मेरी बहन का बेटा सतारा के लिए चल पड़े। काकी को पड़ोसियों के सहारे छोड़ आए जिन्होंने उनकी देखभाल का वायदा किया था।

रेलवे स्टेशन हमारे घर से दस मील दूर था इसलिए स्टेशन तक जाने के लिए ताँगा किया गया। हम नए कपड़े पहन कर खुशी में झूमते हुए घर से निकले लेकिन काकी हमारी विदाई पर अपना दुख रोक नहीं सकीं और जोर-जोर से रोने लगीं।

हम स्टेशन पहुँचे तो मेरा भाई टिकट ले आया और उसने मुझे व बहन के बेटे को रास्ते में खर्च करने के लिए दो-दो आना दिए। हम फौरन शाहखर्च हो गए और पहले नींबू-पानी की बोतल खरीदी। कुछ देर बाद गाड़ी ने सीटी बजाई तो हम जल्दी-जल्दी चढ़ गए, ताकि कहीं छूट न जाएँ। हमें कहा गया था कि मसूर में उतरना है, जो कोरेगाँव का सबसे नजदीकी स्टेशन है।

ट्रेन शाम को पाँच बजे मसूर में पहुँची और हम अपने सामान के साथ उतर गए। कुछ ही मिनटों में ट्रेन से उतरे सभी लोग अपने ठिकाने की ओर चले गए। हम चार बच्चे प्लेटफार्म पर बच गए। हम अपने पिता या उनके चपरासी का इंतजार कर रहे थे। काफी देर बाद भी कोई नहीं आया। घंटा भर बीतने लगा तो स्टेशन मास्टर हमारे पास आया। उसने हमारा टिकट देखा और पूछा कि तुम लोग क्यों रुके हो। हमने उन्हें बताया कि हमें कोरेगाँव जाना है और हम अपने पिता या उनके चपरासी का इंतजार कर रहे हैं। हम नहीं जानते कि कोरेगाँव कैसे पहुँचेंगे। हमने कपड़े-लत्ते अच्छे पहने हुए थे और हमारी बातचीत से भी कोई नहीं पकड़ सकता था कि हम अछूतों के बच्चे हैं। इसलिए स्टेशन मास्टर को यकीन हो गया था कि हम ब्राह्मणों के बच्चे हैं। वे हमारी परेशानी से काफी दुखी हुए।

लेकिन हिंदुओं में जैसा आम तौर पर होता है, स्टेशन मास्टर पूछ बैठा कि हम कौन हैं। मैंने बिना कुछ सोचे-समझे तपाक से कह दिया कि हम महार हैं (बंबई प्रसिडेंसी में महार अछूत माने जाते हैं)। वह दंग रह गया। अचानक उसके चेहरे के भाव बदलने लगे। हम उसके चेहरे पर वितृष्णा का भाव साफ-साफ देख सकते थे। वह फौरन अपने कमरे की ओर चला गया और हम वहीं पर खड़े रहे। बीस-पच्चीस मिनट बीत गए, सूरज डूबने ही वाला था। हम हैरान-परेशान थे। यात्रा के शुरुआत वाली हमारी खुशी काफूर हो चुकी थी। हम उदास हो गए। करीब आधे घंटे बाद स्टेशन मास्टर लौटा और उसने हमसे पूछा कि तुम लोग क्या करना चाहते हो। हमने कहा कि अगर कोई बैलगाड़ी किराए पर मिल जाए तो हम कोरेगाँव चले जाएँगे, और अगर बहुत दूर न हो तो पैदल भी जा सकते हैं। वहाँ किराए पर जाने के लिए कई बैलगाडियाँ थीं लेकिन स्टेशन मास्टर से मेरा महार कहना गाड़ीवानों को सुनाई पड़ गया था और कोई भी अछूत को ले जाकर अपवित्र होने को तैयार नहीं था। हम दूना किराया देने को तैयार थे लेकिन पैसों का लालच भी काम नहीं कर रहा था।

हमारी ओर से बात कर रहे स्टेशन मास्टर को समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। अचानक उसके दिमाग में कोई बात आई और उसने हमसे पूछा, 'क्या तुम लोग गाड़ी हाँक सकते हो?' हम फौरन बोल पड़े, 'हाँ, हम हाँक सकते हैं।' यह सुनकर वह गाड़ीवानों के पास गया और उनसे कहा कि तुम्हें दोगुना किराया मिलेगा और गाड़ी वे खुद चलाएँगे। गाड़ीवान खुद गाड़ी के साथ पैदल चलता रहे। एक गाड़ीवान राजी हो गया। उसे दूना किराया मिल रहा था और वह अपवित्र होने से भी बचा रहेगा।

शाम करीब 6.30 बजे हम चलने को तैयार हुए। लेकिन हमारी चिंता यह थी कि यह आश्वस्त होने के बाद ही स्टेशन छोड़ा जाए कि हम अँधेरे के पहले कोरेगाँव पहुँच जाएँगे। हमने गाड़ीवान से पूछा कि कोरेगाँव कितनी दूर है और कितनी देर में पहुँच जाएँगे। उसने बताया कि तीन घंटे से ज्यादा नहीं लगेगा। उसकी बात पर यकीन करके हमने अपना सामान गाड़ी पर रखा और स्टेशन मास्टर को शुक्रिया कहकर गाड़ी में चढ़ गए। हममें से एक ने गाड़ी सँभाली और हम चल पड़े। गाड़ीवान बगल में पैदल चल रहा था।

स्टेशन से कुछ दूरी पर एक नदी थी। बिलकुल सूखी हुई, उसमें कहीं-कहीं पानी के छोटे-छोटे गड्ढे थे। गाड़ीवान ने कहा कि हमें यहाँ रुककर खाना खा लेना चाहिए, वरना रास्ते में कहीं पानी नहीं मिलेगा। हम राजी हो गए। उसने किराए का एक हिस्सा माँगा ताकि बगल के गाँव में जाकर खाना खा आए। मेरे भाई ने उसे कुछ पैसे दिए और वह जल्दी आने का वादा करके चला गया। हमें भूख लगी थी। काकी ने पड़ोसी औरतों से हमारे लिए रास्ते के लिए कुछ अच्छा भोजन बनवा दिया था। हमने टिफिन बॉक्स खोला और खाने लगे।

अब हमें पानी चाहिए था। हममें से एक नदी वाले पानी के गड्ढे की ओर गया। लेकिन उसमें से तो गाय-बैल के गोबर और पेशाब की बदबू आ रही थी। पानी के बिना हमने आधे पेट खाकर ही टिफिन बंद कर दिया और गाड़ीवान का इंतजार करने लगे। काफी देर तक वह नहीं आया। हम चारों ओर उसे देख रहे थे।

आखिरकार वह आया और हम आगे बढ़े। चार-पाँच मील

हम चले होंगे कि अचानक गाड़ीवान कूदकर गाड़ी पर बैठ गया और गाड़ी हाँकने लगा। हम चकित थे कि यह वही आदमी है जो अपवित्र होने के डर से गाड़ी में नहीं बैठ रहा था लेकिन उससे कुछ पूछने की हिम्मत हम नहीं कर पाए। हम बस जल्दी से जल्दी कोरेगाँव पहुँचना चाहते थे।

लेकिन जल्दी ही अँधेरा छा गया। रास्ता नहीं दिख रहा था। कोई आदमी या पशु भी नजर नहीं आ रहा था। हम डर गए। तीन घंटे से ज्यादा हो गए थे। लेकिन कोरेगाँव का कहीं नामोनिशान तक नहीं था। तभी हमारे मन में यह डर पैदा हुआ कि कहीं यह गाड़ीवान हमें ऐसी जगह तो नहीं ले जा रहा है कि हमें मारकर हमारा सामान लूट ले। हमारे पास सोने के गहने भी थे। हम उससे पूछने लगे कि कोरेगाँव और कितना दूर है। वह कहता जा रहा था, 'ज्यादा दूर नहीं है, जल्दी ही पहुँच जाएँगे। रात के दस बज चुके थे। हम डर के मारे सुबकने लगे और गाड़ीवान को कोसने लगे। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

अचानक हमें कुछ दूर पर एक बत्ती जलती दिखाई दी। गाड़ीवान ने कहा, 'वह देखो, चुंगी वाले की बत्ती है। रात में हम वहीं रुकेंगे। हमें कुछ राहत महसूस हुई। आखिर दो घंटे में हम चुंगी वाले की झोपड़ी तक पहुँचे।

यह एक पहाड़ी की तलहटी में उसके दूसरी ओर स्थित थी। वहाँ पहुँचकर हमने पाया कि बड़ी संख्या में बैलगाडिय़ाँ वहाँ रात गुजार रही हैं। हम भूखे थे और खाना खाना चाहते थे लेकिन पानी नहीं था। हमने गाड़ीवान से पूछा कि कहीं पानी मिल जाएगा। उसने हमें चेताया कि चुंगी वाला हिंदू है और अगर हमने सच बोल दिया कि हम महार हैं तो पानी नहीं मिल पाएगा। उसने कहा, 'कहो कि तुम मुसलमान हो और अपनी तकदीर आजमा लो।'

उसकी सलाह पर मैं चुंगी वाले की झोपड़ी में गया और पूछा कि थोड़ा पानी मिल जाएगा। उसने पूछा, 'कौन हो? मैंने कहा कि हम मुसलमान हैं। मैंने उससे उर्दू में बात की जो मुझे अच्छी आती थी। लेकिन यह चालाकी काम नहीं आई। उसने रुखाई से कहा, 'तुम्हारे लिए यहाँ पानी किसने रखा है? पहाड़ी पर पानी है जाओ वहाँ से ले आओ। मैं अपना-सा मुँह लेकर गाड़ी के पास लौट आया। मेरे भाई ने सुना तो कहा कि चलो सो जाओ।

बैल खोल दिए गए और गाड़ी जमीन पर रख दी गई। हमने गाड़ी के निचले हिस्से में बिस्तर डाला और जैसे-तैसे लेट गए। मेरे दिमाग में चल रहा था कि हमारे पास भोजन काफी है, भूख के मारे हमारे पेट में चूहे दौड़ रहे हैं लेकिन पानी के बिना हमें भूखे सोना पड़ रहा है और पानी इसलिए नहीं मिल सका क्योंकि हम अछूत हैं। मैं यही सोच रहा था कि मेरे भाई के मन में एक आशंका उभर आई। उसने कहा कि हमें एक साथ नहीं सोना चाहिए, कुछ भी हो सकता है इसलिए एक बार में दो लोग सोएँगे और दो लोग जागेंगे। इस तरह पहाड़ी के नीचे हमारी रात कटी।

तड़के पाँच बजे गाड़ीवान आया और कहने लगा कि हमें कोरेगाँव के लिए चल देना चाहिए। हमने मना कर दिया और उससे आठ बजे चलने को कहा। हम कोई जोखिम नहीं उठाना चाहते थे। वह कुछ नहीं बोला। आखिर हम आठ बजे चले और 11 बजे कोरेगाँव पहुँचे। मेरे पिता हम लोगों को देखकर हैरान थे। उन्होंने बताया कि उन्हें हमारे आने की कोई सूचना नहीं मिली थी। हमने कहा कि हमने चिट्ठी भेजी थी। बाद में पता चला कि मेरे पिता के नौकर को चिट्ठी मिली थी लेकिन वह उन्हें देना भूल गया।

इस घटना की मेरे जीवन में काफी अहमियत है। मैं तब नौ साल का था। इस घटना की मेरे दिमाग पर अमिट छाप पड़ी। इसके पहले भी मैं जानता था कि मैं अछूत हूँ और अछूतों को कुछ अपमान और भेदभाव सहना पड़ता है। मसलन, स्कूल में मैं अपने बराबरी के साथियों के साथ नहीं बैठ सकता था। मुझे एक कोने में अकेले बैठना पड़ता था। मैं यह भी जानता था कि मैं अपने बैठने के लिए एक बोरा रखता था और स्कूल की सफाई करने वाला नौकर वह बोरा नहीं छूता था क्योंकि मैं अछूत हूँ। मैं बोरा रोज घर लेकर जाता और अगले दिन लाता था।

स्कूल में मैं यह भी जानता था कि ऊँची जाति के लड़कों को जब प्यास लगती तो वे मास्टर से पूछकर नल पर जाते और अपनी प्यास बुझा लेते थे। पर मेरी बात अलग थी। मैं नल को छू नहीं सकता था। इसलिए मास्टर की इजाजत के बाद चपरासी का होना जरूरी था। अगर चपरासी नहीं है तो मुझे प्यासा ही रहना पड़ता था।

घर में भी कपड़े मेरी बहन धोती थी। सतारा में धोबी नहीं थे, ऐसा नहीं था। हमारे पास धोबी को देने के लिए पैसे नहीं हो, ऐसी बात भी नहीं थी। हमारी बहन को कपड़े इसलिए धोने पड़ते थे क्योंकि हम अछूतों का कपड़ा कोई धोबी धोता नहीं था। हमारे बाल भी मेरी बड़ी बहन काटती थी क्योंकि कोई नाई हम अछूतों के बाल नहीं काटता था।

मैं यह सब जानता था। लेकिन उस घटना से मुझे ऐसा झटका लगा जो मैंने पहले कभी महसूस नहीं किया था। उसी से मैं छुआछूत के बारे में सोचने लगा। उस घटना के पहले तक मेरे लिए सब कुछ सामान्य-सा था, जैसा कि सवर्ण हिंदुओं और अछूतों के साथ आम तौर पर होता है।

पश्चिम से लौटकर आने के बाद बड़ौदा में रहने की जगह

नहीं मिली। पश्चिम से मैं 1916 में भारत लौट आया। महाराजा बड़ौदा की बदौलत मैं अमरीका उच्च शिक्षा प्राप्त करने गया। मैंने कोलंबिया विश्वविद्यालय न्यूयार्क में 1913 से 1917 तक पढ़ाई की। 1917 में मैं लंदन गया। मैंने लंदन विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में परास्नातक में दाखिला लिया। 1918 में मुझे अपनी अधूरी पढ़ाई छोड़कर भारत आना पड़ा। चूँकि मेरी पढ़ाई का खर्चा बड़ौदा स्टेट ने उठाया था इसलिए उसकी सेवा करने के लिए मैं मजबूर था। (इसमें जो तारीखें लिखी हैं वो थोड़ी स्पष्ट नहीं है) इसीलिए वापस आने के बाद मैं सीधा बड़ौदा स्टेट गया। किन वजहों से मैंने वड़ौदा स्टेट छोड़ा उनका मेरे आज के उद्देश्य से कोई संबंध नहीं है, और इसीलिए यहाँ मैं उस बात में नहीं जाना चाहता हूँ। मैं सिर्फ बड़ौदा में मुझे किस तरह के सामाजिक अनुभव हुए उसी पर बात करूँगा और उसी को विस्तार से बताने तक खुद को सीमित रखूँगा।

यूरोप और अमरीका में पाँच साल के प्रवास ने मेरे भीतर से ये भाव मिटा दिया कि मैं अछूत हूँ और यह कि भारत में अछूत कहीं भी जाता है तो वो खुद अपने और दूसरों के लिए समस्या होता है। जब मैं स्टेशन से बाहर आया तो मेरे दिमाग में अब एक ही सवाल हावी था कि मैं कहाँ जाऊँ, मुझे कौन रखेगा। मैं बहुत गहराई तक परेशान था। हिंदू होटल जिन्हें विशिष्ट कहा जाता था, को मैं पहले से ही जानता था। वे मुझे नहीं रखेंगे। वहाँ रहने का एकमात्र तरीका था कि मैं झूठ बोलूँ। लेकिन मैं इसके लिए तैयार नहीं था। क्योंकि मैं अच्छे से जानता था कि अगर मेरा झूठ पकड़ा गया तो उसके क्या परिणाम होंगे। वो पहले से नियत थे। मेरे कुछ मित्र बड़ौदा के थे जो अमरीका पढ़ाई करने गए थे। अगर मैं उनके यहाँ गया तो क्या वो मेरा स्वागत करेंगे

मैं खुद को आश्वस्त नहीं कर सका। हो सकता है कि एक अछूत को अपने घर में बुलाने पर वे शर्मिंदा महसूस करें। मैं थोड़ी देर तक कि इसी पशोपेश में स्टेशन पर खड़ा रहा। फिर मुझे सूझा कि पता करूँ कि कैंप में कोई जगह है। तब तक सारे यात्री जा चुके थे। मैं अकेले बच गया था। कुछ एक गाड़ी वाले जिन्हें अब तलक कोई सवारी नहीं मिली थी वो मुझे देख रहे थे और मेरा इंतजार कर रहे थे। मैंने उनमें से एक को बुलाया और पता किया कि क्या कैंप के पास कोई होटल है। उसने बताया कि एक पारसी सराय है और वो पैसा लेकर ठहरने देते हैं। पारसी लोगों द्वारा ठहरने की व्यवस्था होने की बात सुनकर मेरा मन खुश हो गया। पारसी जोरास्ट्रियन धर्म को मानने वाले लोग होते हैं। उनके धर्म में छुआछूत के लिए कोई जगह नहीं है, इसलिए उनके द्वारा अछूत होने का भेदभाव होने का कोई डर नहीं था। मैंने गाड़ी में अपना बैग रख दिया और ड्राइवर से पारसी सराय में ले चलने के लिए कह दिया।

यह एक दोमंजिला सराय थी। नीचे एक बुजुर्ग पारसी और उनका परिवार रहता था। वो ही इसकी देखरेख करते थे और जो लोग रुकने आते थे उनके खान-पान की व्यवस्था करते थे। गाड़ी पहुँची। पारसी केयरटेकर ने मुझे ऊपर ले जाकर कमरा दिखाया। मैं ऊपर गया। इस बीच गाड़ीवान ने मेरा सामान लाकर रख दिया। मैंने उसको पैसे देकर विदा कर दिया। मैं प्रसन्न था कि मेरे ठहरने की समस्या का समाधान हो गया। मैं कपड़े खोल रहा था। थोड़ा सा आराम करना चाहता था। इसी बीच केयरटेकर एक किताब लेकर ऊपर आया। उसने जब मुझे देखा कि मैंने सदरी और धोती जो कि खास पारसी लोगों के कपड़े पहनने का तरीका है, नहीं पहना है तो उसने तीखी आवाज में मुझसे मेरी पहचान पूछी।

मुझे मालूम नहीं था कि यह पारसी सराय सिर्फ पारसी समुदाय के लोगों के लिए थी। मैंने बता दिया कि मैं हिंदू हूँ। वो अचंभित था और उसने सीधे कह दिया कि मैं वहाँ नहीं ठहर सकता। मैं सकते में आ गया और पूरी तरह शांत रहा। फिर वही सवाल मेरी ओर लौट आया कि कहाँ जाऊँ। मैंने खुद को सँभालते हुए कहा कि मैं भले ही हिंदू हूँ लेकिन अगर उन्हें कोई परेशानी नहीं है तो मुझे यहाँ ठहरने में कोई दिक्कत नहीं है। उसने जवाब दिया कि "तुम यहाँ कैसे ठहर सकते हो मुझे सराय में ठहरने वालों का ब्यौरा रजिस्टर में दर्ज करना पड़ता है" मुझे उनकी परेशानी समझ में आ रही थी। मैंने कहा कि मैं रजिस्टर में दर्ज करने के लिए कोई पारसी नाम रख सकता हूँ। 'तुम्हें इसमें क्या दिक्कत है अगर मुझे नहीं है तो। तुम्हें कुछ नहीं खोना पड़ेगा बल्कि तुम तो कुछ पैसे ही कमाओगे।'

मैं समझ रहा था कि वो पिघल रहा है। वैसे भी उसके पास बहुत समय से कोई यात्री नहीं आया था और वो थोड़ा कमाई का मौका नहीं छोडऩा चाहता था। वो इस शर्त पर तैयार हो गया कि मैं उसको डेढ़ रुपये ठहरने और खाने का दूँगा और रजिस्टर में पारसी नाम लिखवाऊँगा। वो नीचे गया और मैंने राहत की साँस ली। समस्या का हल हो गया था। मैं बहुत खुश था। लेकिन आह, तब तक मैं यह नहीं जानता था कि मेरी यह खुशी कितनी क्षणिक है। लेकिन इससे पहले कि मैं इस सराय वाले किस्से का दुखद अंत बताऊँ, उससे पहले मैं बताऊँगा कि इस छोटे से अंतराल के दौरान मैं वहाँ कैसे रहा।

इस सराय की पहली मंजिल पर एक छोटा कमरा और उसी से जुड़ा हुआ स्नान घर था, जिसमें नल लगा था। उसके अलावा एक बड़ा हाल था। जब तक मैं वहाँ रहा बड़ा हाल

हमेशा टूटी कुर्सियों और बेंच जैसे कबाड़ से भरा रहा। इसी सब के बीच मैं अकेले यहाँ रहा। केयरटेकर सुबह एक कप चाय लेकर आता था। फिर वो दोबारा 9.30 बजे मेरा नाश्ता या सुबह का कुछ खाने के लिए लेकर आता था। और तीसरी बार वो 8.30 बजे रात का खाना लेकर आता था। केयरटेकर तभी आता था जब बहुत जरूरी हो जाता था और इनमें से किसी भी मौके पर वो मुझसे बात करने से बचता था। खैर किसी तरह से ये दिन बीते।

महाराजा बड़ौदा की ओर से महालेखागार आफिस में मेरी प्रशिक्षु की नियुक्ति हो गई। मैं ऑफिस जाने के लिए सराय को दस बजे छोड़ देता था और रात को तकरीबन आठ बजे लौटता था और जितना हो सके कंपनी के दोस्तों के साथ समय व्यतीत करता था। सराय में वापस लौट के रात बिताने का विचार ही मुझे डराने लगता था। मैं वहाँ सिर्फ इसलिए लौटता था क्योंकि इस आकाश तले मुझे कोई और ठौर नहीं था। ऊपर वाली मंजिल के बड़े कमरे में कोई भी दूसरा इनसान नहीं था जिससे मैं कुछ बात कर पाता। मैं बिल्कुल अकेला था। पूरा हाल घुप्प अँधेरे मे रहता था। वहाँ कोई बिजली का बल्ब, यहाँ तक कि तेल की बत्ती तक नहीं थी जिससे अँधेरा थोड़ा कम लगता। केयरटेकर मेरे इस्तेमाल के लिए एक छोटा सा दिया लेकर आता था जिसकी रोशनी बमुश्किल कुछ इंच तक ही जाती थी।

मुझे लगता था कि मुझे सजा मिली है। मैं किसी इन्सान से बात करने की लिए तड़पता था। लेकिन वहाँ कोई नहीं था। आदमी न होने की वजह से मैंने किताबों का साथ लिया और उन्हें पढ़ता गया, पढ़ता गया। मैं पढने में इतना डूब गया कि अपनी तन्हाई भूल गया। लेकिन उड़ते चमगादड़, जिनके लिए वह हॉल उनका घर था, कि चेंचें की आवाजें अक्सर ही मेरे दिमाग को उधर खींच देते थे। मेरे भीतर तक सिहरन दौड़ जाती थी और जो बात मैं भूलने की कोशिश कर रहा था वो मुझे फिर से याद आ जाती थी कि मैं एक अजनबी परिस्थिति में एक अजनबी जगह पर हूँ।

कई बार मैं बहुत गुस्से में भर जाता था। फिर मैं अपने दुख और गुस्से को इस भाव से समझाता था कि भले ही ये जेल थी लेकिन यह एक ठिकाना तो है। कोई जगह न होने से अच्छा है, कोई जगह होना। मेरी हालत इस कदर खराब थी कि जब मेरी बहन का बेटा बंबई से मेरा बचा हुआ सामान लेकर आया और उसने मेरी हालत देखी तो वह इतनी जोर-जोर से रोने लगा कि मुझे तुरंत उसे वापस भेजना पड़ा। इस हालत में मैं पारसी सराय में एक पारसी बन कर रहा।

मैं जानता था कि मैं यह नाटक ज्यादा दिन नहीं कर सकता और मुझे किसी दिन पहचान लिया जाएगा। इसलिए मैं सरकारी बंगला पाने की कोशिश कर रहा था। लेकिन प्रधानमंत्री ने मेरी याचिका पर उस गहराई से ध्यान नहीं दिया जैसी मुझे जरूरत थी। मेरी याचिका एक अफसर से दूसरे अफसर तक जाती रही इससे पहले कि मुझे निश्चित उत्तर मिलता मेरे लिए वह भयावह दिन आ गया।

वो उस सराय में ग्यारहवाँ दिन था। मैंने सुबह का नाश्ता कर लिया था और तैयार हो गया था और कमरे से आफिस के लिए निकलने ही वाला था। दरअसल रात भर के लिए जो किताबें मैंने पुस्तकालय से उधार ली थी उनको उठा रहा था कि तभी मैंने सीढ़ी पर कई लोगों के आने की आवाजें सुनी। मुझे लगा कि यात्री ठहरने के लिए आए हैं और मैं उन मित्रों को देखने के लिए उठा। तभी मैंने दर्जनों गुस्से में भरे लंबे, मजबूत पारसी लोगों को देखा। सबके हाथ में डंडे थे वो मेरे कमरे की ओर आ रहे थे। मैंने समझ लिया कि ये यात्री नहीं हैं और इसका सबूत उन्होंने तुरंत दे भी दिया।

वे सभी लोग मेरे कमरे में इकट्ठा हो गए और उन्होंने मेरे ऊपर सवालों की बौछार कर दी। "कौन हो तुम। तुम यहाँ क्यों आए हो, बदमाश आदमी तुमने पारसी सराय को गंदा कर दिया।" मैं खामोश खड़ा रहा। मैं कोई उत्तर नहीं दे सका। मैं इस झूठ को ठीक नहीं कह सका। यह वास्तव में एक धोखा था और यह धोखा पकड़ा गया। मैं यह जानता था कि अगर मैं इस खेल को इस कट्टर पारसी भीड़ के आगे जारी रखता तो ये मेरी जान ले कर छोड़ते। मेरी चुप्पी और खामोशी ने मुझे इस अंजाम तक पहुँचने से बचा लिया। एक ने मुझसे कमरा कब खाली करूँगा पूछा।

उस समय सराय के बदले मेरी जिंदगी दाँव पर लगी थी। इस सवाल के साथ गंभीर धमकी छिपी थी। खैर मैंने अपनी चुप्पी ये सोचते हुए तोड़ी कि एक हफ्ते में मंत्री मेरी बंगले की दरख्वास्त मंजूर कर लेगा और उनसे विनती की कि मुझे एक हफ्ता और रहने दो। लेकिन पारसी कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने अंतिम चेतावनी दी कि मैं उन्हें शाम तक सराय में नजर न आऊँ। मुझे निकलना ही होगा। उन्होंने गंभीर परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहने को कहा और चले गए। मुझे कुछ नहीं सूझ रहा था। मेरा दिल बैठ गया था। मैं बड़बड़ाता रहा और फूट-फूट के रोया। अंतत: मैं अपनी कीमती जगह, जी हाँ मेरे रहने के ठिकाने से वंचित हो गया। वो जेलखाने से ज्यादा अच्छा नहीं था। लेकिन फिर भी वो मेरे लिए कीमती था।

पारसियों के जाने के बाद मैं बैठकर किसी और रास्ते के बारे में सोचने लगा। मुझे उम्मीद थी कि जल्दी ही मुझे सरकारी

बंगला मिल जाएगा और मेरी मुश्किलें दूर हो जाएगी। मेरी समस्याएँ तात्कालिक थीं और दोस्तों के पास इसका कोई उपाय मिल सकता था। बड़ौदा में मेरा कोई अछूत मित्र नहीं था। लेकिन दूसरी जाति के मित्र थे। एक हिंदू था दूसरा क्रिश्चियन था। पहले मैं अपने हिंदू मित्र के यहाँ गया और बताया कि मेरे ऊपर क्या मुसीबत आ पड़ी है। वह बहुत अच्छे दिल का था और मेरा बहुत करीबी दोस्त था। वह उदास और गुस्सा हुआ। फिर उसने एक बात की ओर इशारा किया कि अगर तुम मेरे घर आए तो मेरे नौकर चले जायेंगे। मैंने उसके आशय को समझा और उससे अपने घर में ठहराने के लिए नहीं कहा।

मैंने क्रिश्चियन मित्र के यहाँ जाना उचित नहीं समझा। एक बार उसने मुझे अपने घर रुकने का न्योता दिया था। तब मैंने पारसी सराय में रुकना सही समझा था। दरअसल न जाने का कारण हमारी आदतें अलग होना था। अब जाना बेइज्जती करवाने जैसा था। इसलिए मैं अपने आफिस चला गया। लेकिन मैंने वहाँ जाने का विचार छोड़ा नहीं था। अपने एक मित्र से बात करने के बाद मैंने अपने (भारतीय क्रिश्चियन) मित्र से फिर पूछा कि क्या वो अपने यहाँ मुझे रख सकता है। जब मैंने यह सवाल किया तो बदले में उसने कहा कि उसकी पत्नी कल बड़ौदा आ रही है उससे पूछ कर बताएगा।

मैं समझ गया कि यह एक चालाकी भरा जवाब है। वो और उसकी पत्नी मूलत: एक ब्राह्मण परिवार के थे। क्रिश्चियन होने के बाद भी पति तो उदार हुआ लेकिन पत्नी अभी भी कट्टर थी और किसी अछूत को घर में नहीं ठहरने दे सकती थी। उम्मीद की यह किरण भी बुझ गई। उस समय शाम के चार बज रहे थे जब मैं भारतीय क्रिश्चियन मित्र के घर से निकला था। कहाँ जाऊँ, मेरे लिए विराट सवाल था। मुझे सराय छोडऩी ही थी लेकिन कोई मित्र नहीं था जहाँ मैं जा सकता था। केवल एक विकल्प था, बंबई वापस लौटने का।

बड़ौदा से बंबई की रेलगाड़ी नौ बजे रात को थी। पाँच घंटे बिताने थे, उनको कहाँ बिताऊँ, क्या सराय में जाना चाहिए, क्या दोस्तों के यहाँ जाना चाहिए। मैं सराय में वापस जाने का साहस नहीं जुटा पाया। मुझे डर था कि पारसी फिर से इकट्ठा होकर मेरे ऊपर आक्रमण कर देंगे। मैं अपने मित्रों के यहाँ नहीं गया। भले ही मेरी हालत बहुत दयनीय थी लेकिन मैं दया का पात्र नहीं बनना चाहता था। मैंने शहर के किनारे स्थित कमाथी बाग सरकारी बाग में समय बिताना तय किया। मैं वहाँ कुछ अन्यमनस्क भाव से बैठा और कुछ इस उदासी से कि मेरे साथ यह क्या घटा। मैंने अपने माता-पिता के बारे में और जब हम बच्चे थे और जब खराब दिन थे, उनके बारे में सोचा।

आठ बजे रात को मैं बाग से बाहर आया और सराय के लिए गाड़ी ली और अपना सामान लिया। न तो केयरटेकर और न ही मैं, दोनों ने एक-दूसरे से कुछ भी नहीं कहा। वो कहीं न कहीं खुद को मेरी हालत के लिए जिम्मेदार मान रहा था। मैंने उसका बिल चुकाया। उसने खामोशी से उसको लिया और चुपचाप चला गया।

मैं बड़ौदा बड़ी उम्मीदों से गया था। उसके लिए कई दूसरे मौके ठुकराए थे। यह युद्ध का समय था। भारतीय सरकारी शिक्षण संस्थानों में कई पद रिक्त थे। मैं कई प्रभावशाली लोगों को लंदन में जानता था। लेकिन मैंने उनमें से किसी की मदद नहीं ली। मैंने सोचा की मेरा पहला फर्ज महाराजा बड़ौदा के लिए अपनी सेवाएँ देना है। जिन्होंने मेरी शिक्षा का प्रबंध किया था। यहाँ मुझे कुल ग्यारह दिनों के भीतर बड़ौदा से बंबई जाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

वह दृश्य जिसमें मुझे दर्जनों पारसी लोग डंडे लेकर मेरे सामने डराने वाले अंदाज में खड़े हैं और मैं उनके सामने भयभीत नजरों से दया की भीख माँगते खड़ा हूँ, वो 18 वर्षों बाद भी धूमिल नहीं हो सका। मैं आज भी उसे जस का तस याद कर सकता हूँ और ऐसा कभी नहीं हुआ होगा कि उस दिन को याद किया और आँखों में आँसू न आ गए हों। उस समय मैंने ये जाना था कि जो आदमी हिंदुओं के लिए अछूत है वो पारसियों के लिए भी अछूत है।

चालिसगाँव में आत्मसम्मान, गँवारपन और गंभीर दुर्घटना

यह बात 1929 की है। बंबई सरकार ने दलितों के मुद्दों की जाँच के लिए एक कमेटी गठित की। मैं उस कमेटी का एक सदस्य मनोनीत हुआ। इस कमेटी को हर तालुके में जाकर अत्याचार, अन्याय और अपराध की जाँच करनी थी। इसलिए कमेटी को बाँट दिया गया। मुझे और दूसरे सदस्य को खानदेश के दो जिलों में जाने का कार्यभार मिला। मैं और मेरे साथी काम खत्म करने के बाद अलग-अलग हो गए। वो किसी हिंदू संत को मिलने चला गया और मैं बंबई के लिए रेलगाड़ी पकड़ने निकल गया। मैं धूलिया लाइन पर चालिसगाँव के एक गाँव में एक कांड की जाँच के लिए उतर गया। यहाँ पर हिंदुओं ने अछूतों के खिलाफ सामाजिक बहिष्कार किया हुआ था।

चालिसगाँव के अछूत स्टेशन पर मेरे पास आ गए और उन्होंने अपने यहाँ रात रुकने का अनुरोध किया। मेरी मूल योजना

सामाजिक बहिष्कार की घटना की जाँच करके सीधे जाने की थी। लेकिन वो लोग बहुत इच्छुक थे और मैं वहाँ रुकने के लिए तैयार हो गया। मैं गाँव जाने के लिए धूलिया की रेलगाड़ी में बैठ गया और घटना की जाँच की और अगली रेल से चालिसगाँव वापस आ गया।

मैंने देखा कि चालिसगाँव स्टेशन पर अछूत (दलित) मेरा इंतजार कर रहे हैं। मुझे फूलों की माला पहनाई गई। स्टेशन से महारवाड़ा अछूतों का घर दो मील दूर था। वहाँ पहुंचने के लिए एक नदी पार करनी पड़ती थी जिसके ऊपर एक नाला बना था। स्टेशन पर कई घोड़ागाड़ी किराए पर जाने के लिए उपलब्ध थी। महारवाड़ा पैदल की दूरी पर था। मैंने सोचा कि सीधे महारवाड़ा जाएँगे। लेकिन उस ओर कोई हलचल नहीं हो रही थी। मैं समझ नहीं पाया कि मुझे इंतजार क्यों करवाया जा रहा है।

तकरीबन एक घंटा इंतजार करने के बाद प्लेटफार्म पर एक घोड़ागाड़ी लाई गई और मैं बैठा। मैं और चालक गाड़ी पर सिर्फ दो लोग थे। दूसरे लोग नजदीक वाले रास्ते से पैदल चले गए। ताँगा मुश्किल से 200 गज चला होगा कि एक गाड़ी से तकरीबन भिड़ गया। मुझे बड़ी हैरत हुई क्योंकि चालक जो कि रोज ही ताँगा चलाता होगा इतना नौसिखिया जैसा चला रहा था। यह दुर्घटना इसलिए टल गई कि पुलिसवाले के जोर से चिल्लाने से कारवाले ने गाड़ी पीछे कर लिया।

खैर हम किसी तरह नदी पर बने नाले की तरफ आ गए। उस पुल के किनारों पर कोई दीवार नहीं थी। कुछ पत्थर दस-पाँच फीट की दूरी पर लगाए गए थे। जमीन भी पथरीली थी। नदी पर बना नाला शहर की ओर था जिधर से हम लोग आ रहे थे। नाले से सड़क की ओर एक तीखा मोड़ लेना था।

नाले के पत्थर के पास घोड़ा सीधे न जाके तेजी से मुड़ गया और उछल पड़ा। ताँगे के पहिए किनारे लगे पत्थरों पर इस तरह फँस गए कि मैं उछल पड़ा और नाले की पथरीली जमीन पर गिर पड़ा। घोड़ा और गाड़ी नाले से सीधे नदी में जा गिरे।

मैं इतनी तेज गिरा कि अचेत हो गया। महारवाड़ा नदी के ठीक उस पार था। जो लोग स्टेशन पर मेरा स्वागत करने आए थे वो मुझसे पहले पहुँच गए थे। मुझे उठाकर रोते बिलखते बच्चों और स्त्री-पुरुषों के बीच से महारवाड़ा ले जाया गया। मुझे कई चोटें आई थीं। मेरा पैर टूट गया था और मैं कई दिन तक चल फिर नहीं पाया। मैं समझ नहीं सका कि ये सब कुछ कैसे हुआ। ताँगा रोज उसी रास्ते से आता-जाता था और चालक से कभी इस तरह की गलती नहीं हुई।

पता करने पर मुझे सच्चाई बताई गई। स्टेशन पर देर इसलिए हुई क्योंकि कोई गाड़ीवान अछूत को अपनी गाड़ी में लाने के लिए तैयार नहीं था। ये उनकी शान के खिलाफ था। महार लोग यह बर्दाश्त नहीं कर सकते थे कि मैं उनके घर तक पैदल आऊँ। ये उनके लिए मेरी शान के खिलाफ था। उन्हें बीच का रास्ता मिला। वो बीच का रास्ता था कि ताँगे का मालिक अपना ताँगा किराए पर दे देगा लेकिन खुद नहीं चलाएगा। महार लोग ताँगा ले सकते थे।

महारों ने सोचा कि ये सही रहेगा। लेकिन वो भूल गए कि सवारी की गरिमा से ज्यादा उसकी सुरक्षा महत्वपूर्ण है। अगर उन्होंने इस पर सोचा होता तो वो भी देखते कि क्या वो ऐसा चालक ढूँढ़ सकते हैं जो सुरक्षित पहुँचा पाए। सच तो ये था कि उनमें से कोई भी गाड़ी चलाना नहीं जानता था क्योंकि ये उनका पेशा नहीं था। उन्होंने अपने में से किसी से गाड़ी चलाने के लिए पूछा। एक ने गाड़ी की लगाम यह सोच कर थाम ली कि इसमें कुछ नहीं रखा। लेकिन जैसे ही उसने मुझे बिठाया वो इतनी बड़ी जिम्मेदारी के बारे में सोच कर नर्वस हो गया और गाड़ी उसके काबू से बाहर हो गई।

मेरी शान के लिए चालिसगाँव के महार लोगों ने मेरी जिंदगी दाँव पर लगा दी। उस वक्त मैंने जाना कि एक हिंदू ताँगेवाला भले ही वो खटने का काम करता हो, उसकी एक गरिमा है। वह खुद को एक ऐसा इन्सान समझ सकता है जो किसी अछूत से ज्यादा ऊँचा है, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि वो अछूत सरकारी वकील है।

दौलताबाद के किले में पानी को दूषित करना

यह 1934 की बात है, दलित तबके से आने वाले आंदोलन के मेरे कुछ साथियों ने मुझे साथ घूमने चलने के लिए कहा। मैं तैयार हो गया। ये तय हुआ कि हमारी योजना में कम से कम वेरूल की बौद्ध गुफाएँ शामिल हों। यह तय किया गया कि पहले मैं नासिक जाऊँगा वहाँ पर बाकी लोग मेरे साथ हो लेंगे। वेरूल जाने के बाद हमें औरंगाबाद जाना था। औरंगाबाद हैदराबाद का मुस्लिम राज्य था। यह हैदराबाद के महामहिम निजाम के इलाके में आता था।

औरंगाबाद के रास्ते में पहले हमें दौलताबाद नाम के कस्बे से गुजरना था। यह हैदराबाद राज्य का हिस्सा था। दौलताबाद एक ऐतिहासिक स्थान है और एक समय में यह प्रसिद्ध हिंदू राजा रामदेव राय की राजधानी थी। दौलताबाद का किला प्राचीन ऐतिहासिक इमारत है ऐसे में कोई भी यात्री उसे देखने का मौका नहीं छोड़ता। इसी तरह हमारी पार्टी के लोगों ने भी अपने कार्यक्रम में किले को देखना भी शामिल कर लिया।

हमने कुछ बस और यात्री कार किराए पर ली। हम लोग

तकरीबन तीस लोग थे। हमने नासिक से येवला तक की यात्रा की। येवला औरंगाबाद के रास्ते में पड़ता है। हमारी यात्रा की घोषणा नहीं की गई थी। जाने-बूझे तरीके से चुपचाप योजना बनी थी। हम कोई बवाल नहीं खड़ा करना चाहते थे और उन परेशानियों से बचना चाहते थे जो एक अछूत को इस देश के दूसरे हिस्सों मे उठानी पड़ती है। हमने अपने लोगों को भी जिन जगहों पर हमें रुकना था वही जगहें बताई थी। इसी के चलते निजाम राज्य के कई गाँवों से गुजरने के दौरान हमारे कोई लोग मिलने नहीं आए।

दौलताबाद में निश्चित ही अलग हुआ। वहाँ हमारे लोगों को पता था कि हम लोग आ रहे हैं। वो कस्बे के मुहाने पर इकट्ठा होकर हमारा इंतजार कर रहे थे। उन्होंने हमें उतर कर चाय-नाश्ते के लिए कहा और दौलताबाद किला देखने का तय किया गया। हम उनके प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुए। हमें चाय पीने का बहुत मन था लेकिन हम दौलताबाद किले को शाम होने से पहले ठीक से देखना चाहते थे। इसलिए हम लोग किले के लिए निकल पड़े और अपने लोगों से कहा कि वापसी में चाय पीएँगे। हमने ड्राइवर को चलने के लिए कहा और कुछ मिनटों में हम किले के फाटक पर थे।

ये रमजान का महीना था जिसमें मुसलामान व्रत रखते हैं। फाटक के ठीक बाहर एक छोटा टैंक पानी से लबालब भरा था। उसके किनारे पत्थर का रास्ता भी बना था। यात्रा के दौरान हमारे चेहरे, शरीर, कपड़े धूल से भर गए थे। हम सब को हाथ-मुँह धोने का मन हुआ। बिना कुछ खास सोचे, हमारी पार्टी के कुछ सदस्यों ने अपने पत्थर वाले किनारे पर खड़े होकर हाथ-मुँह धोया। इसके बाद हम फाटक से किले के अंदर गए। वहाँ हथियारबंद सैनिक खड़े थे। उन्होंने बड़ा सा फाटक खोला और हमें सीधे आने दिया।

हमने सुरक्षा सैनिकों से भीतर आने के तरीके के बारे में पूछा था कि किले के भीतर कैसे जाएँ। इसी दौरान एक बूढ़ा मुसलमान सफेद दाढ़ी लहराते हुए पीछे से चिल्लाते हुए आया, 'थेड़ (अछूत) तुमने टैंक का पानी गंदा कर दिया।' जल्दी ही कई जवान और बूढ़े मुसलमान जो आसपास थे उनमें शामिल हो गए और हमें गालियाँ देने लगे। थेड़ों का दिमाग खराब हो गया है। थेड़ों को अपना धर्म भूल गया है (कि उनकी औकात क्या है) थेड़ों को सबक सिखाने की जरूरत है। उन्होंने डराने वाला रवैया अख्तियार कर लिया।

हमने बताया कि हम लोग बाहर से आए हैं और स्थानीय नियम नहीं जानते हैं। उन्होंने अपना गुस्सा स्थानीय अछूत लोगों पर निकालना शुरू कर दिया जो उस वक्त तक फाटक पर आ गए थे। तुम लोगों ने इन लोगों को क्यों नहीं बताया कि ये टैंक अछूत इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं। ये सवाल वो लोग उनसे लगातार पूछने लगे। बेचारे लोग ये तो जब हम टैंक के पास थे तब तो वहाँ थे ही नहीं। यह पूरी तरह से हमारी गलती थी क्योंकि हमने किसी से पूछा भी नहीं था। स्थानीय अछूत लोगों ने विरोध जताया कि उन्हें नहीं पता था।

लेकिन मुसलमान लोग हमारी बात सुनने को तैयार नहीं थे। वे हमें और उनको गाली देते जा रहे थे। वो इतनी खराब गालियाँ दे रहे थे कि हम भी बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। वहाँ दंगे जैसे हालात बन गए थे और हत्या भी हो सकती थी। लेकिन हमें किसी भी तरह खुद पर नियंत्रण रखना था। हम ऐसा कोई आपराधिक मामला नहीं बनाना चाहते थे। जो हमारी यात्रा को अजीब तरीके से खतम कर दे।

भीड़ में से एक मुसलमान नौजवान लगातार बोले जा रहा था कि सबको अपना धर्म बताना है। इसका मतलब कि जो अछूत है वो टैंक से पानी नहीं ले सकता। मेरा धैर्य खत्म हो गया। मैंने थोड़े गुस्से में पूछा, क्या तुमको तुम्हारा धर्म यही सिखाता है। क्या तुम किसी अछूत को पानी लेने से रोक दोगे अगर वह मुसलमान बन जाए। इन सीधे सवालों से मुसलमानों पर कुछ असर होता हुआ दिखा। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया और चुपचाप खड़े रहे।

सुरक्षा सैनिक की ओर मुड़ते हुए मैंने फिर से गुस्से में कहा, क्या हम इस किले में जा सकते हैं या नहीं। हमें बताओ और अगर हम नहीं जा सकते तो हम यहाँ रुकना नहीं चाहते। सुरक्षा सैनिक ने मेरा नाम पूछा। मैंने एक कागज पर अपना नाम लिखकर दिया। वह उसे सुपरिटेंडेंट के पास भीतर ले गया और फिर बाहर आया। हमें बताया गया कि हम किले में जा सकते हैं लेकिन कहीं भी किले के भीतर पानी नहीं छू सकते हैं। और साथ में एक हथियार से लैस सैनिक भी भेजा गया ताकि वो देख सके कि हम उस आदेश का उल्लंघन तो नहीं कर रहे हैं।

पहले मैंने एक उदाहरण दिया था कि कैसे एक अछूत हिंदू पारसी के लिए भी अछूत होता है। जबकि यह उदाहरण दिखाता है कि कैसे एक अछूत हिंदू मुसलमान के लिए भी अछूत होता है।

डॉक्टर ने समुचित इलाज से मना किया जिससे युवा स्त्री की मौत हो गई

यह घटना भी आँखें खोलने वाली है। यह घटना काठियावाड़ में एक गाँव की अछूत स्कूल में पढ़ाने वाली शिक्षिका की है। मिस्टर गांधी द्वारा प्रकाशित जनरल यंग इंडिया

में यह घटना एक पत्र के माध्यम से 12 दिसंबर 1929 को सामने आई। इसमें लेखक ने अपने निजी अनुभव कि कैसे उसकी पत्नी जिसने अभी बच्चे को जन्म दिया था, हिंदू डॉक्टर के ठीक से उपचार नहीं करने के चलते मर गई। पत्र कहता है : इस महीने की पाँच तारीख को मेरा बच्चा हुआ था और सात तारीख को मेरी बीवी बीमार हो गई। उसको दस्त शुरू हो गई। उसकी नब्ज धीमी हो गई। और छाती फूलने लगी। उसको साँस लेने में तकलीफ होने लगी और पसलियों में तेज दर्द होने लगा। मैं एक डॉक्टर को बुलाने गया लेकिन उसने कहा कि वह एक हरिजन के घर नहीं जाएगा और न ही वह बच्चे को देखने के लिए तैयार हुआ। तब मैं वहाँ से नगर सेठ और गारिसाय दरबार गया और उनसे मदद की भीख माँगी। नगर सेठ ने आश्वासन दिया कि मैं डॉक्टर को दो रुपये दे दूँगा। तब जाकर डॉक्टर आया। लेकिन उसने इस शर्त पर मरीज को देखा कि वह हरिजन बस्ती के बाहर मरीज को देखेगा। मैं अपनी बीवी और नन्हें बच्चे को लेकर बस्ती के बाहर आया। तब डाक्टर ने अपना थर्मामीटर एक मुसलमान को दिया और उसने मुझे दिया। और मैंने अपनी बीवी को। फिर उसी प्रक्रिया में थर्मामीटर वापस किया। यह तकरीबन रात के आठ बजे की बात है। बत्ती की रोशनी में थर्मामीटर को देखते हुए डॉक्टर ने कहा कि मरीज को निमोनिया हो गया है। उसके बाद डॉक्टर चला गया और दवाइयाँ भेजी। मैं बाजार से कुछ लिनसीड खरीद कर ले आया और मरीज पर लगाया। बाद में डॉक्टर ने मरीज को देखने से इनकार कर दिया, जबकि मैंने उसको दो रुपये दिये थे। बीमारी खतरनाक थी अब केवल भगवान ही हमारी मदद कर सकता था। मेरी जिंदगी की लौ बुझ गई। आज दोपहर दो बजे उसकी मत्यु हो गई।"

उस अछूत शिक्षिका का नाम नहीं दिया हुआ है। और इसी तरह से डॉक्टर का भी नाम नहीं लिखा हुआ है। अछूत शिक्षक ने बदले की कार्यवाही के डर के कारण नाम नहीं दिया। लेकिन तथ्य एकदम सही हैं।

उसके लिए किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है। पढ़ा-लिखा होने के बावजूद डाक्टर ने बुरी तरह से बीमार औरत को खुद थर्मामीटर लगाने से मना कर दिया और उसके मना करने के कारण ही औरत की मृत्यु हुई। उसके मन में बिलकुल भी उथल-पुथल नहीं हुई कि वह जिस पेशे से बँधा हुआ है उसके कुछ नियम कानून हैं। हिंदू किसी अछूत को छूने की बजाय अमानवीय होना पसंद करेंगे।

गाली-गलौज और धमकियों के बाद युवा क्लर्क को नौकरी छोड़नी पड़ी

इस बात को आगे कहने के लिए यह एक और घटना है। 6 मार्च 1938 को कासरवाड़ी (वुलेन मिल के पीछे), दादर बंबई में इंदु लाल यादनिक की अध्यक्षता में भंगी लोगों की एक बैठक हुई। इस बैठक में एक भंगी लड़के ने अपना अनुभव इन शब्दों में बयान किया :

मैंने 1933 में भाषा की अंतिम परीक्षा पास की। मैंने अंग्रेजी कक्षा चार तक पढ़ी थी। मैंने बंबई म्युनिसिपल पार्टी के स्कूल कमेटी में शिक्षक के पद के लिए आवेदन किया। लेकिन वैकेंसी नहीं होने के चलते असफल रहा। फिर मैंने अहमदाबाद में पिछड़े वर्ग के अफसर के लिए तलाती पद (गाँव का पटवारी) के लिए आवेदन किया और सफल रहा। 19 फरवरी 1936 को मैं बारसाठ तालुका के खेड़ा जिले में मामलातदार के कार्यालय में तलाती पद पर नियुक्त हुआ। वैसे मेरा परिवार मूलत: गुजरात से आया था। लेकिन मैं इससे पहले कभी गुजरात नहीं गया था। मैं यहाँ पहली बार आया था। उसी तरह से मैं यह नहीं जानता था कि सरकारी दफ्तर में भी छुआछूत है। मेरे हरिजन होने की बात मेरे आवेदन में पहले से लिखी थी इसलिए मैं उम्मीद करता था कि मेरे सहकर्मियों को पहले से ही पता होगा कि मैं कौन हूँ। इसीलिए मैं मामलातदार आफिस के क्लर्क के व्यवहार से हैरान रह गया जब मैं तलाती का पद सँभालने वहाँ पहुँचा।

कारकून ने बड़े ही घृणा से मुझसे पूछा, 'तुम कौन हो।' मैंने जवाब दिया, 'सर मैं एक हरिजन हूँ।' उसने कहा, 'भाग जाओ, और दूर खड़े रहो, तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मेरे नजदीक आने की। अभी तुम ऑफिस में हो अगर तुम बाहर होते तो अब तक मैं तुम्हें छह लात मारता। हिम्मत तो देखो कि ये यहाँ नौकरी करने आया है। उसके बाद उसने मुझे कहा कि अपने सर्टिफिकेट और नियुक्ति का आदेश पत्र यहाँ जमीन पर रख दो।'

जब मैं बरसाड़ के मामलातदार ऑफिस में काम कर रहा था तो मुझे सबसे ज्यादा मुश्किल पानी पीने में होती थी। ऑफिस के बरामदे में पीने के पानी के डिब्बे रखे थे और वहाँ पर एक इन डिब्बों की जिम्मेदारी और पानी पिलाने के लिए आदमी रखा हुआ था। उसका काम ऑफिस के क्लर्कों के लिए जब भी उनकी जरूरत हो पानी पिलाना था। उसकी अनुपस्थिति में वे लोग खुद डिब्बे से जाकर पानी निकालकर पीते थे।

मेरे मामले में यह बिल्कुल असंभव था। मैं उस डिब्बे को छू नहीं सकता था। मेरे छूते ही वह पानी दूषित हो जाता। इसीलिए मुझे पानी पिलाने वाले की दया पर निर्भर रहना पड़ता था। मेरे इस्तेमाल के लिए एक खराब सा बर्तन रखा था। जिसे मेरे सिवाय न कोई छूता था और न कोई धोता था। इसी बर्तन में पानी वाला मेरे लिए पानी डाल देता था। लेकिन मैं पानी तभी ले

सकता था जब वह पानी पिलाने वाला मौजूद हो। पानी पिलाने वाले को भी मुझे पानी देना पसंद नहीं था। जब मैं पानी पीने आ रहा होता था तो वह वहाँ से सरक लेता था। नतीजन मुझे बिना पानी पिए रहना पड़ता था। ऐसे एक-दो दिन नहीं थे बल्कि कई दिन थे जिसमें मुझे पानी नहीं मिलता था।

इसी तरह की दिक्कत मेरे ठहरने को लेकर भी थी। मैं बारसाड़ में अजनबी था। कोई भी हिंदू मुझे घर देने को तैयार नहीं था। बारसाड़ के अछूत भी अपने यहाँ ठहराने को तैयार नहीं थे। उन्हें भय था कि वो उन हिंदुओं को नाराज कर देंगे जिन्हें पसंद नहीं था कि मैं एक क्लर्क बनकर अपनी हैसियत से ज्यादा रहूँ। सबसे ज्यादा तकलीफ मुझे खाने को लेकर हुई। ऐसी कोई जगह और ऐसा कोई आदमी नहीं था जो मुझे खाना दे सके। मैं सुबह-शाम भाजस खरीदकर गाँव के बाहर किसी सुनसान जगह पर खाता था। और रात को मामलातदार आफिस के बरामदे में आकर सोता था। इस तरीके से मैंने कुल चार दिन बिताए। यह सब कुछ मेरे लिए असहनीय हो गया। तब मैं अपने पूर्वजों के गाँव जंत्राल चला गया। यह बलसाढ़ से छह मील दूर था। हर दिन मुझे 11 मील पैदल चलना पड़ता था। यह सब मैंने कुल डेढ़ महीने किया। उसके बाद मामलातदार ने मुझे एक तलाती के पास काम सीखने के लिए भेज दिया। इस तलाती के पास तीन गाँव जंत्राल, खांपुर और सैजपुर का जिम्मा था। जंत्राल उसका मुख्यालय था। मैं जंत्राल में इस तलाती के साथ दो महीने रहा। उसने मुझे कुछ नहीं सिखाया। मैं एक बार भी गाँव के ऑफिस में नहीं गया। गाँव का मुखिया खासतौर पर मेरा विरोधी था। एक बार उसने कहा, 'तुम्हारे बाप-दादे गाँव के आफिस में झाड़ू-बुहारू करते थे और तुम अब हमारी बराबरी में बैठना चाहते हो। देख लो, बेहतर यही होगा कि नौकरी छोड़ दो।'

एक दिन तलाती ने मुझे सैजपुर जनसंख्या सारिणी तैयार करने के लिए बुलाया। मैं जंत्राल से सैजपुर गया। मैंने देखा कि मुखिया और तलाती गाँव के आफिस में कुछ काम कर रहे हैं। मैं गया और ऑफिस के दरवाजे पर खड़ा हो गया और उन्हें नमस्कार किया। लेकिन उन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। मैं वहाँ तकरीबन 15 मिनट खड़ा रहा। मैं इस जिंदगी से वैसे ही तंग आ गया था और इस अपमान और उपेक्षा से और क्षुब्ध हो गया। मैं वहाँ पास में पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गया। मुझे कुर्सी पर बैठा देखकर मुखिया और तलाती मुझसे बिना कुछ कहे वहाँ से चले गए।

थोड़ी देर बाद वहाँ लोग आना शुरू हो गए। और जल्द ही एक बड़ी भीड़ मेरे इर्द-गिर्द इकट्ठा हो गई। इस भीड़ का नेतृत्व गाँव के पुस्तकालय का पुस्तकालयाध्यक्ष कर रहा था। मैं समझ नहीं सका कि क्यों एक पढ़ा-लिखा आदमी इस भीड़ का नेतृत्व कर रहा है। मैं थोड़ी देर बाद समझा कि यह कुर्सी उसकी थी। वह मुझे बुरी तरह से गालियाँ दे रहा था। रवानियां (गाँव के नौकर) की ओर देखकर वह बोलने लगा 'इस गंदे भंगी कुत्ते को किसने कुर्सी पर बैठने का आदेश दिया।' रवानियां ने मुझे कुर्सी से उठाया और मुझसे कुर्सी लेकर चला गया। मैं जमीन पर बैठ गया।

उसके बाद भीड़ गाँव के आफिस में घुस गई और उसने मुझे घेर लिया। वह एक गुस्से से सुलगती हुई भीड़ थी। कुछ लोग मुझे गाली दे रहे थे। कुछ लोग मुझे धमकी दे रहे थे कि वो मुझे धारया (गँडासा) से टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। मैंने उनसे याचना की कि मुझे माफ कर दें, मेरे ऊपर रहम करें। इससे उस भीड़ पर कोई फर्क नहीं पड़ा। मुझे समझ नहीं आया कि मैं अपना जीवन कैसे बचाऊँ। मेरे दिमाग में एक विचार कौंधा कि मैं मामलातदार को जो अपने ऊपर बीती है उसे लिखकर बताऊँ और यह भी बताऊँ कि अगर यह भीड़ मुझे मार डालती है तो मेरे शरीर का कैसे अंतिम संस्कार करें। फिलहाल यही मेरी उम्मीद थी कि अगर इस भीड़ को पता चल गया कि मैं मामलातदार को इस घटना के बारे में बता रहा हूँ तो वे शायद अपना हाथ रोक लें। मैंने रवानिया से एक कागज लाने को कहा। वह कागज लेकर आया। फिर मैंने अपनी पेन से बड़े-बड़े शब्दों में लिखना शुरू किया ताकि सब लोग उसे पढ़ सकें :

'सेवा में,
मामलातदार, तालुका बरसाड़
महोदय,

परमार कालीदास शिवराम की ओर से नमस्कार स्वीकार हो। मैं आपको आदरपूर्वक सूचित करता हूँ कि आज मेरे ऊपर मृत्यु आन पड़ी है। अगर मैं अपने माता-पिता की बात सुनता तो ऐसा कभी नहीं होता। आपका बड़ा उपकार होगा यदि आप मेरे माता-पिता को मेरी मृत्यु के बारे में सूचित कर दें।'

पुस्तकालय अध्यक्ष ने मेरे लिखे को पढ़ा और उसे फाड़ने का आदेश दिया। इस पर मैंने उसे फाड़ दिया। उन्होंने मेरी बहुत बेइज्जती की। 'तुम अपने आप को हमारा तलाती कहकर संबोधित करना चाहते हो। तुम एक भंगी हो, ऑफिस में बैठना चाहते हो, कुर्सी पर बैठना चाहते हो।' मैंने उनसे दया की भीख माँगी और वायदा किया कि ऐसा कभी नहीं करूँगा और यह भी वायदा किया कि नौकरी छोड़ दूँगा। मैं वहाँ रात के सात बजे तक, भीड़ के छँट जाने तक रोका गया। तब तक तलाती और मुखिया दोनों नहीं आए। उसके बाद मैंने 15 दिन की छुट्टी ली और अपने माता-पिता के पास बंबई लौट आया।

सावित्री बाई फुले याद यो, कररया हिन्दुस्तान तनै

□ मुकेश यादव

प्रथम शिक्षिका होणे का, दें गौरव-सम्मान तनै
सावित्री बाई फुले याद यो, कररया हिन्दुस्तान तनै

ज्योतिबा तै पढ़कै नै, मन म्हं यो अहसास हुया
पीड़िता शोषित जनता का यो, अनपढ़ता तै नाश हुया
सबका पढ़णा घणा जरूरी, यो पक्का विश्वास हुया
बालिका स्कूल पुणे म्हं खोल्या, यो पहला प्रयास हुया
भले तालाब महं फैंकी कांकर, हथेली पै राक्खी जान तनै
सावित्री बाई फूले.........

छोरियां नै पढ़ावण खातर, घर-घर म्हं तू जाण लगी
बिना पढ़ाई कुछ भी ना, यू जन-जन नै समझाण लगी
समाज के ठेकेदार सजग हुये, निशाने पै तू आण लगी
गोबर कीचड़ पत्थर फैंके, जिस रस्ते पै जाण लगी
चरित्रहीन करैगी छोरियां नै, न्यू करण लगे बदनाम तनै
सावित्री बाई फूले..........

बाल विवाह की म्हारे देश म्हं, सबतै बड़ी बीमारी थी
बचपन म्हं विधवा घणी छोरी, दर-दर ठोकर खारी थी
इनकी शादी घणी जरूरी, या तनै मन म्हं धारी थी
केश मुंडन को बंद करने की, मिल-जुल करी तैयारी थी
नाइयों की हड़ताल कराकै, विरोध का करया एलान तनै
सावित्री बाई फूले..............

विधवा प्रसूति गृह खोल कै, करया सबतै बड़ा काम तनै
पहला बच्चा ले कै गोद, यशवंत धरया था नाम तनै
अपणे पति की मौत पे छोडे, सारे ताम रै झाम तनै
खुद मुखाग्नि दे कै नै, कर दिये काम तमाम तनै
'मुकेश' कह ज्यब प्लेग फैलग्या, खुद की झोंकी जान तनै
सावित्री बाई फूले...........

संपर्क - 94169-16596

जड़ै दीखज्या ज़ुल्फ़ उड़ै ए रात करणीया कोन्या मैं

□ मनजीत भोळा

इश्क़-विश्क, प्यार-व्यार की बात करणीया कोन्या मैं
जड़ै दीखज्या ज़ुल्फ़ उड़ै ए रात करणीया कोन्या मैं

ना परचम ना कोए पार्टी ना लड़ता मैं निशानां पै
कलमकार हूँ कलम से हमला करता हूँ शैतानां पै
मंदिर मस्ज़िद नाम जिनके चढ़ूँ ना उन दुकानां पै
मानवता तै बाध भरोसा नहीं मनै भगवानां पै
राजभवन म्हं मोड्यां की जमात करणीया कोन्या मैं
जड़ै दीखज्या ज़ुल्फ़ ....

कोए आसिफा जब रोवै सै रूह डाटे तै डटती ना
एक बेटी का बाप सूँ मैं चिंता चित की मिटती ना
एक आधी ए रात इसी जा जिसमें नींद उचटती ना
सोच की कोए सीमा ना कित कित या भटकती ना
सरल सभा सै काबू म्हं ख़यालात करणीया कोन्या मैं
जड़ै दीखज्या ज़ुल्फ़ ....

बुरा बुरे नै कह सकूँ ना मैं इतणा भी लाचार नहीं
देख हक़ीक़त नज़र फेरलयूँ बिकाऊ पत्रकार नहीं
छोडकै घर नै खुशहाली का बाहर करूं प्रचार नहीं
चोरां गैल्यां करूं दोस्ती इसा मैं चौकीदार नहीं
कुछ कहो रै घाल किसेके जज़्बात करणीया कोन्या मैं
जड़ै दीखज्या ज़ुल्फ़ ....

सरहद पै तैनात रहणीया मैं सेना का जवान हूँ
चीर कै धरती अन्न उपजाऊँ खेतां म्हं किसान हूँ
कुरान कोए आयत ना रै ना मैं गीता का ज्ञान हूँ
सबनै दे सम्मान एकसा वो भारत का संविधान हूँ
मनजीत भोळा धर्म देखकै दुभात करणीया कोन्या मैं
जड़ै दीखज्या ज़ुल्फ़ ....

संपर्क - 9034080315

एक लेखक को सत्य की प्रकृति की पड़ताल करके पक्ष चुनना होगा।
सच्चाई तटस्थ नहीं, पक्षधर होती है। - हावर्ड फास्ट

प्रेम चन्द अग्रवाल

423/10,प्रीत नगर, अम्बाला शहर

संपादक मंडल, देस हरियाणा

आदरणीय, पत्रिका के सितंबर-दिसम्बर 2018 के अंक में प्रकाशित दो लेख मेरे लिए विशेष रूचिकर रहे। डॉ. हरदीप राय शर्मा जी द्वारा "ठोस अवशिष्ट प्रबंधन" में लेखक ने हिन्दी भाषा के प्रति पूरा न्याय किया है। उनके लिए हिन्दी शब्दावली का ढूंढना इतना आसान न रहा होगा। मैं उनका मन की गहराई से धन्यवाद करता हूं।

अमन वासिष्ठ जी का लेख मार्क्सवाद पर हटकर लगा। इसलिए इसपर अवश्य कुछ मन की बात कहूंगा।

भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक श्री अमन वासिष्ठ जी का लेख "मार्क्स के जीवन को दो सौ साल पूरे हो चले" पढ़कर मैं बड़ी अजमंजस की स्थिति में पड़ गया हूं। न कुछ इसके पक्ष में लिख पा रहा हूं और न ही विरोध में लिखने की मनः स्थिति में हूं। ऐसा लगता है कि लेखक मार्क्स और मार्क्सवाद का तो मन से समर्थक है लेकिन भारत में आज मार्क्सवाद की दयनीय हालत के लिए यहां के मार्क्सवादियों को जिम्मेदार मानता है। भारत के मार्क्सवादी न भारत की संस्कृति को समझ पाए और न यहां की जन भावनाओं को।

चाहे राजनीति हो या सामाजिक कार्य, जिन लोगों के बीच आपने काम करना है उनकी समस्याओं और कठिनाइयों को ध्यान में रखकर ही तो आपको उनके निदान ढूंढने होते हैं। लेकिन भारत के मार्क्सवादियों ने आयातित मार्क्सवाद को ज्यों का त्यों यहां के लोगों पर थोपने की कोशिशें की। परिणाम सामने है।

अमन वाशिष्ठ जी का गांधी के साथ मार्क्सवाद का सामंजस्य बैठाना जबरदस्ती गले पड़ना जैसा ही है और बड़ा ही कृत्रिम सा लगा। लेखक की वेदना कि "दुखद ही है कि मार्क्स के मानवता-दर्शन को नितान्त धर्मद्रोही के रूप में चित्रित किया गया।" से मैं सहमत हूं। इस देश के सबसे बड़े समुदाय की आस्थाओं को नीचा दिखाने में ही भारत के मार्क्सवादियों को अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि लगता रहा।

लेखक के ये वाक्य महत्वपूर्ण हैं 'क्या हर सिद्धांत को स्थूल बनाकर छोड़ दें या उसको सूक्ष्म विस्तार भी दें। क्या केवल पुराने निष्कर्षों को ही दोहराते रहना विज्ञान है। मार्क्सवाद केवल आर्थिकता तक ही सीमित नहीं है और न ही यह वर्तमान संकट से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता लेकिन इसकी अनदेखी भी न हो'

संपर्क: 9467909649

डॉ. राजेंद्र चौधरी

प्रियवर, देस हरियाणा के पिछले दो अंक मिले बहुत अच्छे लगे। काफी सारी सामग्री अच्छी थी। स्वामी वाहिद काजमी का लेख पढ़ कर एक विचार आया कि उन के बारे में भी एक लेख होना चाहिए। मालूम नहीं आप उन के बारे में कितना जानते हैं पर हरियाणा से बाहर आ कर वो अंबाला में एक खंडहरनुमा भवन में अकेले ही रहते हैं और काफी विद्वान है। अगर देस हरियाणा उनसे बातचीत छापे तो रोचक होगी। फोन तो उन के पास शायद नहीं है पर उन का पता तो लेख के साथ दिया हुआ है, और वो वहीं रहते हैं।

शुभकामनाओं सहित,

संपर्क - 9416182061

(डॉ. राजेंद्र चौधरी जी आपका शुक्रिया आपने ध्यान दिलाया। हमें खुशी है कि हम स्वामी वाहिद काजमी का साक्षात्कार अपने पाठकों के लिए उपलब्ध करवा सके। इसके लिए वरिष्ठ साहित्यकार जयपाल जी व मोहित जी का धन्यवाद कि उन्होंने यह स्वामी वाहिद काजमी का साक्षात्कार हमें उपलब्ध करवाया और रंजना अग्रवाल जी का विशेष धन्यवाद कि उन्होंने हमारा आग्रह स्वीकार किया। -सं.)

विजय कुमार सिंघल की ग़ज़लें

हंसी जो आज लब पर है, उसे दिल में छुपा रक्खो
मुसीबत के दिनों के वास्ते कुछ तो बचा रक्खो
दिया हासिल नहीं तो तोड़ लो सूखे हुए पत्ते
समय की इस अंधेरी रात में कुछ तो जला रक्खो
उसे हम किस तरह अपना हितैषी मान सकते हैं
जो हमसे कह रहा है आंख से सपने जुदा रक्खो
अगर इस पार से उस पार जाने की तमन्ना है
उफनते पानियों में तैरने का हौंसला रक्खो
बचत इस दौर में इससे बड़ी हो भी नहीं सकती
बचाना है जो कुछ तुमको जमीर अपना बचा रक्खो

2-

कौन हमारी बात सुनेगा लफ्फाजों के जंगल में
कब से हम चुपचाप खड़े हैं, आवाजों के जंगल में
कुछ गूंगी बेदाग दुआएं जिनका कोई नाम नहीं
जाने किसको ढूंढ रही हैं दरवाजों के जंगल में
कहां सफर हमको ले आया कहां हमारी रात हुई
किससे अब ये राज छुपे हैं हमराजों के जंगल में
बामकसद क्यों नहीं बनाते अपनी सब परवाजों को
कब तक भटकोगे बेमकसद परवाजों के जंगल में

सम्पर्क : 01746-235160

परतंत्र भारत की प्रथम स्वतंत्र सरकार

□ **राजेन्द्र सिंह 'सोमेश'**

भारतीय स्वाधीनता की कहानी कोई दो सौ वर्षों की है। इसमें अनेक उतार-चढ़ाव आए हैं। यह स्वाधीनता का संघर्ष कई मोर्चों पर लड़ा गया। कहीं पर अहिंसक था, कहीं क्रांतिकारी मन वचन से थे तो कहीं यह पूर्णतया सशस्त्र संघर्ष था। कहीं यह भारत से बाहर चालू था तो कहीं घरेलू मोर्चे पर लड़ा गया। सशस्त्र संघर्ष की कहानी का आजकल कम वर्णन हो रहा है अहिंसक संघर्ष का वर्णन ज्यादा है। सशस्त्र संघर्ष की शुरुआत विदेशों में 'गदर पार्टी' से हुई, जो विफल हो गई। ऐसी ही शुरुआत राजा महेंद्र प्रताप ने विदेशी सहायता से करने की कोशिश की, जिसमें जर्मनी, टर्की और अफगानीस्तान का सहयोग था। यह प्रयत्न विश्व के प्रथम महायुद्ध के समय किया गया था। भारत में क्रांतिवीरों ने अंग्रेजों को खूब छकाया था। उन्हें कदम कदम पर क्रांतिवीरों का डर सताता रहता था। गदर पार्टी की विद्रोह की योजना विफल होने पर जब क्रांतिकारियों को फांसियां दी गई तो करतार सिंह सराभा की आयु मात्र साढ़े उन्नीस साल थी। शहीद भगत सिंह इन्हें अपना आदर्श मानते थे। अनेक वीरों का जीवन विदेशों में आजादी के लिए खाक छानते बीता था। शहीद भगत सिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह 1909 में विदेश गए, 14 अगस्त 1947 को भारत लौटे। राजा महेंद्र प्रताप 20 सितम्बर 1914 को विदेश गए, सन् 1946 में भारत लौटे थे।

इन वीरों का त्याग अनुपम था। विदेशों में भूखे, प्यासे, कष्ट सहते अनेक वीर तो आजादी का सपना दिल में लिए स्वर्ग सिधार गए। विदेशों में रहकर आजादी के लिए कष्ट उठाने वालों में लाला हरदयाल, श्यामजी कृष्ण वर्मा, सूफी अम्बा प्रसाद, डॉ. चम्पक रमण पिल्लै, मदन लाल धींगड़ा, रास बिहारी बोस एवं मौलवी बरकतुल्ला तथा अन्य वीर एवं गदरी बाबे थे। भारत मां के इन सपूतों ने अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, मैक्सिको और जापान आदि देशों में रहकर अनेक कष्ट उठाए।

विश्व के प्रथम महायुद्ध के समय विदेश राजा महेन्द्र प्रताप ने यह योजना बनाई कि दुश्मन का दुश्मन दोस्त हो सकता है। जर्मनी और ब्रिटेन की शत्रुता का लाभ उठाकर भारत को स्वतंत्र कराना चाहिए। भारत में रहते राजा साहब को कई बार अंग्रेज अधिकारियों से मिलना पड़ा। उनमें रूखे और दम्भपूर्ण व्यवहार ने राजा साहब के मन में स्वाधीनता की ललक पैदा कर दी। गदर पार्टी भी उन दिनों आजादी के लिए सशस्त्र क्रांति के लिए प्रयास कर रही थी। गदर पार्टी का अखबार 'गदर' कई भाषाओं में प्रकाशित होता था। उसके पंजाबी संस्करण के सम्पादक करतार सिंह सराभा थे। गदर पार्टी ने भारत की स्वाधीनता के लिए जो योजना बनाई थी, उसकी सूचना एक गद्दार कृपाल सिंह ने सरकार को दे दी थी। भारतीय क्रांति आंदोलन को जहां साम्राज्यवादी अंग्रेजों से टकराना होता था, वहीं भेदिए और गद्दार भी कम नहीं थे। गदर आंदोलन की बड़ी असफलताओं के कारणों में से एक उसका भेद खुल जाना था। वीर सावरकर उन दिनों अन्डेमान की जेल में थे। उन्हें स्वतंत्र कराने के लिए जर्मनी जंगी जहाज 'एमडन' का सहायक कमांडर बनाकर श्री चम्पक रमण पिल्ले को बंगाल की खाड़ी में भेजा गया। 11 नवम्बर सन् 1914 को जब वे पनडुब्बी में थे तो पनडुब्बी नष्ट हो गई। परन्तु श्री पिल्लै बचकर निकल गए। अंग्रेजों ने डर कर उन दिनों उन पर एक लाख रुपए का इनाम रखा था। इस योजना के विफल होने पर वीरों ने विदेशों से सहायता लेने का प्रयास किया। राजा महेन्द्र प्रताप, लाला हरदयाल, हरिश्चन्द्र (स्वामी श्रद्धानंद के पुत्र) और वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय ने मिलकर योजना तैयार की कि ब्रिटेन के विरुद्ध जर्मनी की सहायता ली जाए। इसी उद्देश्य को लेकर राजा महेन्द्र प्रताप जर्मनी के 'विलियम कैसर' से मिले। विलियम कैसर ने राजा साहब को पच्चीस हजार सैनिक देने का वादा किया। उन दिनों जर्मनी का युद्ध पोलैंड के मोर्चे पर चल रहा था। राजा साहब को वहां की लड़ाई भी दिखाई गई। राजा साहब ने छब्बीस भारतीय राजाओं को पत्र लिखकर क्रांति के लिए तैयार कर लिया था। आशा यह थी कि अफगानिस्तान की ओर से आक्रमण होने पर भारतीय राजा भी विद्रोह से जुड़ जाएंगे।

जर्मनी से राजा साहब तुर्की गए। इनके साथ जर्मन के कूटनीतिज्ञ डॉ. वान हैंटिंग, डॉ. बेकर, सुरक्षा अधिकारी डॉ. मीड मायर और मौलवी बरकातुल्ला थे। ये वहां तुर्की के खलीफा से मिले। तुर्की के युद्ध मंत्री अनवर पाशा ने दस हजार सैनिक देने का वादा किया। इसके साथ ही अफगानिस्तान के शाह के नाम पत्र देकर काबुल भेजा। यह यात्रा बहुत ही कष्टदायक और जोखिम भरी थी। दक्षिणी ईरान पर अंग्रेजों का प्रभुत्व था और उत्तरी ईरान पर रूसी सैनिकों का प्रभाव था। काबुल तक की यात्रा बहुत कष्टदायक और जोखिम वाली थी। बाद में पता चला कि रूसी सैनिक इन्हें ढूंढ रहे हैं। इससे दल दो भागों में बंट कर चलने लगा। इन लोगों को रात में यात्रा करनी पड़ती थी और दिन में छिप कर रहना पड़ता था। अनेक कष्ट उठाकर राजा साहब का दल सुरक्षित काबुल पहुंच गया। दूसरा दल रूसी सैनिकों द्वारा पकड़ लिया गया। राजा साहब ने अफगानिस्तान के शाह हबीबुल्ला से बातचीत की और उसे अपनी आशा के अनुरूप पाया। अफगानिस्तान में जो भारतीय कैदी थे, उन्हें राजा साहब ने छुड़ा लिया और उन्हें भी भारत की स्वतंत्रता के लिए तैयार कर लिया। वहां पर विचार बना कि काबुल सरकार किसकी मदद करे किसी एक व्यक्ति की या भारत की जनता की। फिर यह बात बनी कि भारत की सरकार हो और अफगानिस्तान

उसकी मदद करे। देश की स्वतंत्रता के बाद मदद की राशि को लौटा दिया जाएगा।

इस प्रकार काबुल में ही एक दिसम्बर 1915 को परतंत्र भारत की प्रथम स्वतंत्र सरकार की स्थापना की गई। इस अवसर पर राजा महेंद्र प्रताप ने कहा कि यद्यपि यह राष्ट्रीय सरकार कांग्रेस द्वारा स्थापित होनी चाहिए थी, परन्तु आज की तिथि में यह संभव नहीं है। इसलिए जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक के लिए सरकार अस्थाई रूप से भारत की आजादी का काम करेगी।

इस सरकार में कुछ पद इस प्रकार थे -

राष्ट्रपति	राजा महेंद्रप्रताप सिंह
प्रधानमंत्री	मौलवी बरकतुल्ला
विदेश मंत्री	डॉ. चम्पक रमण पिल्लै
गृह एवं प्रकाशन मंत्री	अब्दुल्ला सिन्धी
युद्ध मंत्री	मौलाना बशीर

सरकार गठन के बाद अफगानिस्तान के साथ एक सन्धि की गई। अफगानिस्तान के शाह ने भारत सरकार (अस्थाई) को पंद्रह हजार सैनिक देने का वादा किया। जब तक जर्मनी के सैनिक भारत अफगानिस्तान की सीमा पर आएंगे, तब तक अफगानिस्तान के सैनिक भारत पर आक्रमण कर देंगे। राजा साहब ने इस सरकार की ओर से पत्र देकर डॉ. मथुरा सिंह और खुशी मोहम्मद राजा को रूस भेजा। राजा साहब के प्रभाव से ही रूस और अफगानिस्तान में सन्धि हो गई। दुर्भाग्य से अफगानिस्तान में स्थिति में परिवर्तन आ गया। शाह हबीबुल्ला की हत्या हो गई और अमानुल्ला अफगानिस्तान के शाह बन गए। शाह अमानुल्ला ने भी पूर्व की सन्धि का पालन किया। भारत की अस्थाई सरकार के साथ मिल कर चार मई 1919 को शाह अमानुल्ला ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी। भारत में विद्रोह का दिन 9 मई रखा गया था। पेशावर के गुलाम हैदर को इस सशस्त्र क्रांति का संदेश देने हेतु भारत भेजा गया था। किसी गद्दार भेदिया ने इसकी सूचना अंग्रेजों को दे दी। अस्थाई सरकार के कार्यकर्ता पकड़ लिए गए और सारा परिश्रम व्यर्थ गया। गिरफ्तार व्यक्तियों में श्री अमीर चन्द बमवाल प्रमुख थे।

विश्व युद्ध के बाद विश्व के हालात बदल गए। रूस में भी क्रांति हो गई थी। राजा महेंद्र प्रताप ने रूस में जाकर वहां के नेता ट्रास्टकी से बातचीत की। ट्रास्टकी ने उन्हें समयानुसार पूरी मदद देने का आश्वासन दिया। दोनों नेता भारत.रूस की प्रगाढ़ मैत्री करना चाहते थे। रूसी नेता ट्रास्टकी भी रूस में नहीं रह पाए। उन्हें रूस छोड़ कर जाना पड़ा। इस प्रकार के हालात में स्वाधीनता के सारे प्रयास असफल हो गए। परन्तु वे हार मानने वाले नहीं थे। उन्होंने प्रयास जारी रखे। सन् 1933 में जब नेताजी सुभाष चंद्र बोस वियना गए तो चम्पक रमण पिल्लै ने उनसे मिल कर अपनी पिछली योजनाओं का ब्यौरा दिया। इसी का परिणाम नेताजी की आजाद हिन्द फौज और भारत की दूसरी अस्थाई सरकार थी।

ये क्रांतिवीर आजादी के लिए विदेशो में निरंतर सक्रिय रहे। अनेक नेता तो विदेश में ही परलोकवासी हो गए। डॉ. चम्पक रमण पिल्ले 1934 में मात्र 43 वर्ष की आयु में स्वर्ग सिधारे। 17 सितम्बर सन् 1966 को इनकी अस्थियां भारत लाकर अरब सागर में प्रवाहित की गई। मौलवी बरकतुल्ला का 5 जनवरी सन् 1928 को केलिफोर्निया में देहांत हो गया था। उनको मिट्टी देते हुए राजा साहब ने कहा था, 'मौलवी साहब हम आपको यहां विदेश की भूमि में अस्थाई रूप से सुला रहे हैं।। जब हमारा देश स्वतंत्र हो जाएगा, हम आपको फिर वहीं ले चलेंगे'। परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा दिन कभी नहीं आया।

राजा साहब अनेक देशों की खाक छानते रहे और द्वितीय विश्व महायुद्ध के समय जापान जाकर एक बार फिर भारतीय कैदी सैनिकों को लेकर आजाद हिन्द फौज बनाई। कार्यकारिणी में राजा साहब अध्यक्ष, रास बिहारी बोस उपाध्यक्ष, आनन्द मोहन सहाय मंत्री और मोहन सिंह को सेनाध्यक्ष बनाया गया। जापानियों की राजा साहब के साथ पटरी नहीं बैठी और उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। बाद में जर्मनी से जापान जाकर सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज की कमान संभाल ली। आनन्द मोहन सहाय नेता जी के साथ भी जुड़े रहे। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि अगर नेताजी काबुल से सीधे जापान पहुंच जाते और अगस्त या सितम्बर 1942 में अगर कहीं आजाद हिन्द सेना के साथ हम भारत में घुस आने में समर्थ हो जाते, तो भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास दूसरी प्रकार ही लिखा जाता, परन्तु वह अवसर जापानी अधिकारियों के ओछे दृष्टिकोण और स्वार्थपरता के कारण हाथ से निकल गया।'

इस सबके बाद भी ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लार्ड ऐटली को स्वीकार करना पड़ा कि हमें भारत की सेना पर विश्वास नहीं रहा और ब्रिटेन युद्ध में इतना कमजोर हो गया है कि वह अपनी सेना भारत में रख नहीं सकता। इसलिए भारत को आजादी देनी पड़ रही है।

गांधी जी के प्रयास से 1914 में भारत से गए राजा साहब 9 अगस्त 1946 को भारत लौटे। यहां आकर सर्वहितकाम में लगे रहे, परन्तु भारतीय क्रांतिकारियों की जो उपेक्षा सरकार से मिली, वह उन्हें भी मिली। प्रथम लोकसभा के वे सांसद भी रहे थे। अपना सम्पूर्ण जीवन देश के लिए अर्पित करने वालों एवं विदेशों में जाकर भारतीय स्वाधीनता की चिंगारी जलाने वाले वीरों को हमारा कोटिशः कोटिशः नमन।

संदर्भ—1.भारत के प्रवासी क्रांतिकारी, सूचना व प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार

2. अभिनन्दन ग्रंथ राजा महेंद्र प्रताप
3. भारत का मुक्ति संग्राम .अयोध्या सिंह
4. गदर पार्टी का इतिहास
5. भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास ले0 मन्मथनाथ

संपर्क -